एक गुप्त-मत

(शिव-भक्ति : क्या और कैसे)

महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज

अखिल भारतीय
संतमत-सत्संग-प्रकाशन

प्रकाशक
अखिल भारतीय संतमत-सत्संग-प्रकाशन-समिति
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट
पत्रालय–बरारी, भागलपुर-३ (बिहार)

सर्वाधिकार सुरक्षित

तृतीय संस्करण : मार्च, २००३ ई० (३,००० प्रतियाँ)
चतुर्थ संस्करण : जनवरी, २००८ ई० (२,१०० प्रतियाँ)

मूल्य : १५ रुपये मात्र

मुद्रक
शांति-संदेश प्रेस
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३

प्राक्कथन

'औरउ एक गुपुत मत' पर दृष्टि पड़ते ही मानस-अध्येता के मानस-पटल पर एक बिजली-सी कौंध आएगी और वे हर्षातिरेक में बोल उठेंगे कि यह मानस की पंक्ति है। मानस की पंक्तियों में भी सामान्य पंक्ति नहीं, बल्कि इसमें निहित मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम की सद्युक्ति है, जिससे भवद्:ख की निवृत्ति होती है।

'मानस' शब्द के अनेक अर्थों में एक अर्थ मानसरोवर भी होता है। एक श्रान्त-क्लान्त पथिक तड़ाग-तट पर उपस्थित हुआ। वहाँ की निराली छटा-घटा को देखकर उसका मन-मोर नाच उठा। स्वच्छ सलिल से सरोवर आकण्ठ सराबोर है। खिले-अधखिले सहस्त्रों सरसिज के सौरभ से चतुर्दिक सुरभित है। पद्मपराग से अनुराग रखने वाले कुछ भ्रमर उन पुष्पों पर मँडरा रहे हैं और कुछ मधुपान कर मस्ति में झूमते हुए गुणगान कर रहे हैं। लता-वल्लियों के कुंज में जहाँ-तहाँ पंछी कूंज रहे हैं, तो कहीं कोयल सुमधुर कंठ से पंचम तान अलाप रही है। शीतल, मंद, सुगंधित समीरण तथा वहाँ के पवित्र वातावरण से पथिक पुलकायमान हो रहा है; किन्तु इतना सबकुछ होने पर भी पथिक को जल के नीचे छिपे जलचर का ज्ञान नहीं होता। आवश्यकता है—जल-जाल की, जिसको जल में डालकर उसके नीचे छिपे माल को निकालकर देखा जा सके।

रामचरितमानस में सगुण रामकथा रूप जल है। सुललित छंद, सोरठे, चौपाइयाँ, दोहे आदि बहुरंगे कमल हैं। सहज, बोधगम्यता, सरसतसा, उपमा-उपमेय, अनुपम अनुप्रास आदि पक्षियों के कलरव हैं। काव्यालंकार की झनकार भ्रमर-गुंजार है। अविधा, लक्षणा, और व्यंजना त्रिविध बयार हैं, जिनमें सर्वसाधारण जन के मन का आकर्षण स्वाभाविक है। इससे मनोरंजन होता है; किन्तु दु:खभंजन तो राम के निरंजन-स्वरूप से ही संभव है।

रामचरित मानस के अन्तर्गत सगुण राम-कथारूप जल में 'निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।' निर्गुण ब्रह्म छिपा हुआ है। वह दुग्ध में घृत, पुष्प मे सुगंध, मेँहदी में लाली और दारु में पावक की भाँति व्यापक है।

''एकु दारुगत देखिअ एकू। पाबक सम जुग ब्रह्म बिबेकु।।''

—बालकाण्ड

गोस्वामीजी का कथन है कि निर्गुण-निराकार से सगुण-साकार की उत्पत्ति हुई। निर्गुण मूल है और सगुण फूल। यथा—

'फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा।।'

—किष्किन्धा काण्ड

'पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न आइय मर्म।
मायाछन्न न देखिय, जैसे निर्गुन ब्रह्म।।'

हम जल के ऊपर फूल को सरलतापूर्वक देख सकते हैं; किन्तु जलान्तर्गत उसके मूल को नहीं। इसलिए ऐसा कहा जा सकता कि बिना मूल के ही फूल है। यदि कोई बिना मूल के ही फूल का अस्तित्व मानता है तो वह भूल मैं है; क्योंकि मूल नहीं तो फूल कहाँ से? अवश्य ही मूल अव्यक्त है और फूल व्यक्त। कहने का तात्पर्य यह कि मूल स्वरूप, निर्गुण और अव्यक्त है तथा फूल सगुण और व्यक्त है।

श्री मद्भगवद्गीता (७/२४)में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से स्पष्ट रूप से यही कहा है—

''अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धय:।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।

यद्यपि मैं अव्यक्त हूँ; तथापि मूर्ख लोग मुझे व्यक्त अर्थात् मनुष्य देहधारी मानते हैं; परन्तु यह बात सच नहीं है, मेरा अव्यक्त स्वरूप ही सत्य है।

—गीता-रहस्य

'मानस' सामान्य सरोवर नहीं वह तो रत्नाकर है जिससे 'नवरस जप तप योग विरागा' के अतिरिक्त और भी अनेक अनमोल रत्न भरे पड़े हैं।

मानस को कण्ठस्थ करनेवाले लय, सुर, राग और तान के साथ नृत्यगान करनेवाले मानस की एक-एक पंक्ति की विभिन्न प्रकार से व्याख्या कर आख्यानों के साथ लगातार कई दिनों तक व्याख्यान करने वाले बहुत हो सकते है; किन्तु मरजीवा (गोताखोर) बनकर गोता लगाने और उसके अन्तस्तलस्थित हीरा, लाल, मणि, माणिक्य एवं मोती निकालनेवाले विरले होते है। सन्त कबीर की अनुभूत-पूत वाणी है—

'जिन ढूँढा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं बपुरी बूड़न डरी रही किनारे बैठ।।
कबीर काया समुँद है अन्त न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै मानिक लावै सोय।।
मैं मरजीवा समुँद का डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की जामें वस्तु अनेक।।
डुबकी मारी समुँद में निकसा जाय अकास।
गगनमडल में घर किया हीरा पाया दास।।

मैं मरजीवा समुँद का पैठा सप्त पताल।
लाज कानि कुल मेटि के गहिले निकसा लाल।।'

'ज्ञान' के संदर्भ में संत दरिया साहब (बिहारी) के विचार ये हैं–

''ज्ञान रतन की खानि मनि मानिक दीपक बरै।
शब्द सजीवन जानि अमरपूर अमृत पिवै।।'

संत कबीर साहब और संत दरिया साहब (बिहारी) के वचन में प्रयुक्त 'ज्ञान' से तात्पर्य श्रवण मनन या अध्ययन से प्राप्त बौद्धिक ज्ञान नहीं अपितु निदिध्यासन कर अनुभव ज्ञान से है जो ज्ञान की चरम सीमा है। अनु=पीछे, भव=उत्पन्न। अनुभव ज्ञान का अर्थ होता है अभ्यास द्वारा प्राप्त ज्ञान। उपर्युक्त युगल संतो की वाणियों में वर्णित माणिक, हीरा, लाल आदि जागतिक जवाहर नहीं है जो बाजारों में मोल मिलता है और कितनी भी मात्रा में क्यों न मिल जाये, प्राप्तकर्ता कंगाल बना रहता है; किन्तु यह तो वह अनमोल रत्न है, जो अन्तस्साधना से मिलता है और जिसको पाकर पानेवाले मालामाल हो जाता है, उसका जीवन निहाल हो जाता; फिर तो उसके ऊपर काल की भी दाल नहीं गलती।

'काल रूप चक्की चले, सदा दिवस अरू रात।
अगुन सगुन दुइ पाटला,ता में जीव पिसात।।
आसे पासे जो रहे,निपट पिसावै सोय।
कीला से लागा रहे, ताको बिघन न होय।।'

(संत कबीर)

चक्की के दो पाट होते है। एक नीचे रहता है और दूसरा ऊपर। नीचेवाला पाट स्थिर रहता है और ऊपर वाला चलता है। दोनों पाटों के बीच एक कील होती है, जिस आधार पर दोनों की गति-विधि संतुलित रहती है।

संत कबीर के कहने का तात्पर्य यह है कि परा और अपरा यानी निर्गुण और सगुण, ये दोनों प्रकृतियाँ कालरूप चक्की के दो पाट हैं। परा प्रकृति अक्षर, चेतन, स्थिर और रूपान्तर दशा से रहित है; किन्तु अपरा प्रकृति क्षर, जड़, चलनात्मक और नाशवान है। उपर्युक्त प्रकृतियों में परम प्रभु परमात्मा कीलरूप होकर व्यापक हैं। कील को छोड़कर जो दाने इधर-उधर घूमते हैं। वे चक्की में पिस जाते हैं; परंतु जो दाना कील को पकड़ कर रहता है, वह अक्षुण्ण रहता है। उसी प्रकार जो जीव परमात्मा को छोड़कर विषयों में चक्कर काटता है, वह मृत्यु को प्राप्त होता है और जो

परमात्मा को पकड़कर रहता है, वह अमृतत्व लाभ करता है। वह 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' हो जाता है। वास्तव में वह परमात्मारूपी लाल है, जिसकी उपलब्धि जड़-चेतन की ग्रंथि विच्छिन्न होने पर होती है। संत कबीर की उक्ति है–

'लाल लाल जो सब कोइ कहै,सबकी गाँठी लाल।
गाँठी खोलि कै परखै नाहीं,तासे भयो कंगाल।।'

'लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।'

संतवाणी के अनेक स्थलों पर हम लाल, जवाहर, मानसरोवर, मोती और हंस का उल्लेख पाते हैं। यथा–

मेरी नजर में मोती आया है।
कोई कहे हलका कोई कहे भारी, दूनों भूल भुलाया है।
ब्रह्मा विष्णु महेसुर थाके, तिनहूँ खोज न पाया है।।
संकर सेस औ सारद हारे, पढ़ि रटि गुण बहु गाया है।
है तिल के तिल के तिल भीतर, बिरले साधू पाया है।।

—संत कबीर साहब

'उछरत सिंधु असंख्य तरंग लहि, लहरि अनेक समाना।
लाल जवाहिर मोती तामें, किमि करि करत बखाना।।
विविरन विलगि हंस गुन राजित, मान सरोवर जाना।
मंजन मैलि भई तन निर्मल, बहुरि न मैल समाना।।

—संतदरियासाहबबिहारी

'चल रे हंसा राम सिंधा बागड़ में क्या रह्यो बंधा।।
मानसरोवर विमल नीर। जहँ हंस समागम तीर तीर।।
जहँ मुक्ताहल बहु खानपान। जहँ अवगत तीरथ नित सनान।।'

—संत दरिया साहब, मारवाड़ी

इसमें संदेह नहीं कि मुक्ता चुनने की क्षमता हंस में होती है, बगुले में नहीं। संत कबीर साहब के विचार में मानसरोवर में रहकर भी अपनी प्रकृति-प्रवृति और योग्यता के अनुकूल कोई मत्स्य भुगता है तथा कोई मोती चुगता है।

'हंसा बगुला एक सा,मानससरोवर माहिं। बगा ढढोरे माछरी,हंसा मोती खाहिं॥

संत कबीर के कहने का आशय यह है कि अभक्त व्यक्ति वक की भाँति है। जो मानस की मोटी-मोटी बातों को पकड़कर बक-बक करता रहता है। बक-बक करता वह थकता नहीं। परिणामस्वरूप एक दिन उसका अनमोल मानव-जीवन निरर्थक हो जाता है। भक्तजन हंस की तरह होते हैं, जो क्षीर-नीर यानि सत्यासत्य का पृथक्करण कर सत्यरूप मोती ग्रहण करते हैं, यानि अन्तस्साधना द्वारा अन्तर्ज्योति को प्राप्त कर मानव-जीवन को ज्योतिर्मय बनाते हैं।

इस लघु पुस्तिका में अपनी लघुमति अनुरूप रामचरितमानसान्तर्गत गुप्त असंख्य रत्नों में से मात्र एक मोती को प्रकट करने का प्रयास किया गया है, जो मानस-मराल को प्रिय होगा। गोस्वामीजी के शब्दों में हम कहना चाहेंगे, जो महर्षि बाल्मीकि ने भगवान श्रीराम से वनवास काल में उनके निवास हेतु कहा था–

जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु।।

प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित साधन-चतुष्ट्य का यदि कोई संयमित और नित्य-नियमित रूप से अभ्यास करे, तो उसके भवपाश का विनाश होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

पुस्तक-प्रणयन हेतु पाण्डुलिपि से लेकर प्रकाशन तक के प्रशंसनीय सहयोगी एवं कर्मठ कर्मयोगी डॉ० सुरेश प्रसाद, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्; श्री आशुतोषजी, एम०एस-सी० तथा कुमार अशोक को उनके अकथ परिश्रम के लिए मेरा साधुवाद, आशीर्वाद और धन्यवाद है।

–संतसेवी

२३/८/२००० ई०
(श्रीकृष्ण जन्माष्टमी)

अनुक्रमणिका

- प्राक्कथन
- गोस्वामी तुलसीदास और उनका रामचरितमानस
- रामचरित मानस का बहिरंग
- रामचरितमानस का अंतरंग

१. शिव कौन?

२. भगवान शिव द्वारा गुरु का सम्मान

३. शिव का सगुण और निर्गुण स्वरूप

४. शिवलिंग

५. शिव की पूजा लिंग में क्यों?

६. शिव के शब्दमय शरीर का दर्शन

७. महालिंग और शंकर-भजन/ गुप्तमत

८. बाइबिल में गुप्तमत

९. कुरान शरीफ में गुप्तमत

१०. गुप्तमत की व्याख्या: महर्षि मेँहीँ के शब्दों में

११. अपनी बात

– 'कर' और 'शंकर' की व्याख्या
– संतमत की अंतस्साधना
– उपसंहार

गोस्वामी तुलसीदास और उनका रामचरितमानस

भारत कृषि-प्रधान देश होते हुए सदा से ऋषि-प्रधान देश रहा है। जिस प्रकार समय-समय पर सरोवर में सरसिज समुत्पन्न होकर स्वसौरभ से संसार को सुरभित करता है, उसी प्रकार इस अवनीतल पर संत-भगवंत अवतीर्ण होकर अपने ज्ञानालोक से जगत् को आलोकित करते रहे हैं। उन्हीं संतों की परंपरा में कविकुल कुमुद सुधाकर संत तुलसीदासजी हुए, जिन्होंने रविकुल-कमल दिवाकर भगवन्त श्रीराम की जन-मन-भावन अति पावन गाथा गाई।

गोस्वामी जी ने कई सद्ग्रंथों का प्रणयन किया, यथा—रामचरितमानस, दोहावली, कवितावली, विनय-पत्रिका, हनुमान चालीसा आदि, जिनमें, 'रामचरितमानस' का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। भारत का ऐसा कोई वैदिक साक्षर घर नहीं, जहाँ रामचरितमानस नहीं हो। इसका सम्मान स्वदेश में ही नहीं, विदेशों में भी हुआ है। अन्य देशों की बात तो जाने दीजिये, रूस जैसे नास्तिक देश में भी यह प्रवेश कर चुका है। यह इसकी लोकप्रियता का परिचायक है।

रामचरितमानस एक विलक्षण ग्रंथ है। इसमें लौकिक-पारलौकिक, आधिभौतिक-आध्यात्मिक प्रभृति प्रायः सभी प्रकार के ज्ञानों का समावेश है। गोस्वामीजी ने विशेषकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के पावन चरित्र का सजीव चित्रण किया है। कवि ने अपनी काव्यकला की छटा में इसको दो भागों में विभक्त किया हैं—(१) बहिरंग और (२) अंतरंग।

बहिरंग भाग प्रकट और अंतरंग भाग गुप्त है। बहिरंग भाग का कथा-प्रसंग से और अंतरंग भाग का अन्तस्साधना से संबंध है। स्थूल-सगुण-साकार, भक्ति प्रकट मत है, प्रायः सभी कोई जानते हैं; किन्तु सूक्ष्म-सगुण-साकार, सूक्ष्मतर-सगुण-निराकार तथा सूक्ष्मतम-निर्गुण-निराकार भक्ति गुप्तमत है, जिसको अन्तस्साधक और सन्त के अतिरिक्त दूसरे नहीं जानते।

रामचरितमानस का बहिरंग

भगवान श्रीराम का पावन नगरी अयोध्या में राजा दशरथ के गृह-अवतरण, शिशुपन में राजोचित लालन-पालन, किशोरपन में तपोधन विश्वामित्र मुनि के साथ तपोवन-गमन, वहाँ मुनिजी के द्वारा अस्त्र-शस्त्रादि का शिक्षा-ग्रहण, असुरों का विध्वंसकरण, युवापन में जनकपुरगमन, मार्ग

में गौतमतिय अहल्या का उद्धारकरन, जनकपुर में शिवधनु भंगकर भूमिजा के साथ पाणिग्रहण, जनकपुर से जानकीजी के साथ अयोध्या-आगमन, वहाँ उनको युवराज पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए राजा दशरथ का मन; किन्तु कैकेयी और मन्थरा की कुमंत्रणा के कारण श्रीसीता तथा अनुज लक्ष्मण सहित श्रीराम का कानन-गमन, अयोध्या में राजा दशरथ का मरण, दण्डकवन में असुराधिप रावण द्वारा सीता-हरण, किष्किन्धा में सुग्रीव के साथ मैत्री-वरण, बालि-हनन, सीताजी का अन्वेषण, हनुमानजी का लंका-गमन, वहाँ की अशोक वाटिका में सीताजी से मिलन, परस्पर कथोपकथन, माँ जानकी से अनुमति पाकर अशोकवाटिका का फल-भक्षण, विटप विध्वंसकरन, अक्षयकुमार का निधन, रावण का मान-मर्दन, लंका-दहन, पुनः सीता से मिलन, पश्चात् किष्किन्धा में भगवान श्रीराम के दर्शन, लंका-घटित सारी घटनाओं का स्पष्टीकरण, सैन्य संगठन, सेतु-बंधन, लंका पर आक्रमण, वहाँ भगवान का रावण-कुम्भकर्णादि राक्षसों के साथ महारण, अंततोगत्वा रावण सहित समस्त राक्षसी सेना का मरण, विभीषण का राज्यसिंहासन, श्रीसीताजी का उद्धार कर भगवान का ससैन्य पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या आगमन, ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त राज्य-संचालन और अन्त में निजधाम (साकेत) गमन।

भगवान की इस नर-लीला-कथा प्रसंग से कौन अनभिज्ञ है? सभी अभिज्ञ हैं; क्योंकि यह प्रकट मत है। अब हम उनके गुप्तमत से परिचित होने के लिए दत्तचित्त होकर अग्रसर हों।

रामचरितमानस का अंतरंग

अपने राजत्वकाल में एक बार भगवान श्रीराम ने गुरुजन, पुरजन, सज्जन, भक्तगण आदि को आमंत्रित किया। उन सज्जनों के शुभागमन पर प्रवचन आरम्भ के पूर्व भूमिका के रूप में भगवान ने कहा—

सुनहु सकल पुरजन मम बानी।कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सुहाहि।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।

प्राक्कथन के पश्चात् भगवान का प्रवचन निम्न प्रकार हुआ—'बड़े भाग्य से मनुष्य का शरीर मिलता है। सब ग्रंथों ने कहा है कि यह देवताओं को दुर्लभ है। यह शरीर साधनों का घर है और मोक्ष का द्वार है, इसे पाकर जिसने परलोक (मुक्ति) को नहीं सुधारा, वह परलोक में दुःख पाता है,

सिर धुन-धुनकर पछताता है और काल, कर्म तथा ईश्वर को झूठ ही दोष लगाता है। हे भाई! इस शरीर का फल विषय (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का भोगना) नहीं है, स्वर्ग (यदि प्राप्त कर सके तो वह भी) थोड़ा (ओछा) और अंत में दुःख देनेवाला है। जो मनुष्य का शरीर पाकर विषय में मन लगाता है, वह मूर्ख अमृत से बदलकर विष लेता है। उसे कभी कोई अच्छा नहीं कहता, जो पारसमणि खोकर करजनी (घुँघची) लेता है। चार खानियों में (अण्डज, पिण्डज, उष्मज और अंकुरज) में चौरासी प्रकार की योनियाँ हैं। यह अविनाशी जीव उसमें माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण के घेरे में रहकर सदा भटकता फिरता है। अकारण ही स्नेह करनेवाले ईश्वर कभी दया करके (जीव को) मनुष्य का शरीर देते हैं। मनुष्य का शरीर संसाररूपी समुद्र पार करने के लिए नाव है और मेरी कृपा अनुकूल वायु है। इस दृढ़ नाव के मल्लाह सद्गुरु हैं। ऐसा दुर्लभ साज मनुष्य को सहज ही में प्राप्त है। जो मनुष्य भवसागर पार होने के ऐसे साज-सामानों को पाकर भवसागर पार नहीं होता है, वह कृतघ्न, नीचबुद्धि और आत्महिंसक की गति में जाता है।'

पुनः कहते हैं–

जौं परलोक इहाँ सुख चहहु। सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहु।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।

हम भगवान से विनयपूर्वक पाणिबद्ध प्रार्थना करना चाहेंगे–प्रभो! आपकी वेद-पुराण-वर्णित भक्ति जो सरल और सुखद है, किस प्रकार की जाये? जिज्ञासा का समाधान स्वयं भगवान श्रीमुख से इस भाँति करते हैं–

'औरउ एक गुपुत मत,सबहिं कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर,भगति न पावैई मोरि।।'

इस दोहे का सामान्य अर्थ होगा–भगवान श्रीराम पाणिबद्ध हो सबसे एक गुप्तमत कहते हैं कि 'शंकर भजन' के बिना कोई व्यक्ति मेरी भक्ति नहीं पा सकता। तात्पर्य यह कि जो 'शंकर-भक्त' होंगे, वे ही राम-भक्त होंगे, अन्यथा नहीं।

यदि यह अर्थ यथार्थ है, तो प्रश्नोदय होगा कि लंकापति रावण भोले-बाबा का बड़ा भक्त था। उसको तो रामभक्त होना चाहिए था; किन्तु वह रामभक्त नहीं हो सका। क्यों? 'रामभक्त' होना तो दूर की बात रही। शिव का अनन्य भक्त होकर उसने सीता-हरण जैसा जघन्य कार्य किया, यह कैसे? क्या अनन्य भक्त का यही लक्षण है कि वह अपने इष्ट के

उपास्यदेव की भार्या का अपहरण करे? अतएव यह अर्थ नहीं जँचता।

दूसरी बात यह कि 'शिव भक्ति' किये बिना 'राम-भक्ति' नहीं हो सकती है, तो भगवान श्रीराम ने जो परम भक्तिन शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दिया, उसमें इसकी चर्चा अवश्य होनी चाहिए थी; किन्तु कहीं चर्चा नहीं है, क्यों?

रामचरितमानस के अनुसार 'शंकर-भक्त' ही 'राम-भक्त' हो सकते हैं; किन्तु उसी मानस के अन्यान्य स्थानों में हम पाते हैं कि 'शिव-भक्ति' की कौन कहे, शिव को चुनौती देनेवाले लक्ष्मण, हनुमान, अंगद आदि राम के अनन्य भक्त हुए हैं। वनवास काल में ससैन्य भरतागमन सुनकर श्रीलक्ष्मणजी आक्रोश में आकर कहते हैं–

जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई।।

–अयोध्याकाण्ड

रावण के प्रति हनुमानजी का वचन है–

'सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी।बिमुख राम त्राता नहिं कोपी।।
संकर सहस विष्णु अज तोही।सकहिं न राखि राम कर द्रोही।।

–सुन्दरकाण्ड

मेघनाद के प्रति श्रीलक्ष्मणजी का कथन है–

जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघुवीर दोहाई।।

–लंकाकाण्ड

रावण के प्रति अंगद का वचन–

सुनु रावण परिहरि चतुराई।भजसि न कृपासिन्धु रघुराई।।
जौं खल भएसि राम कर द्रोही।ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोहि।।

–लंकाकाण्ड

उपर्युक्त चुनौतियाँ तो भगवान राम के भक्तों की हैं। अब स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम क्या कहते हैं, इसका भी हम मनन करें।

जब भगवान की सुग्रीव से मित्रता हुई, तो सुग्रीव ने अपनी दीनता की सारी बातें उनसे कह सुनाई। अनाथ के नाथ दीनानाथ होते हैं। मित्र की दयनीय दशा देखकर करुणा-वरुणालय रघुनाथजी का हृदय करुणा से उमड़ पड़ा ओर अपनी दोनों प्रलंब भुजाओं को उठाकर प्रतिज्ञा करते हुए उन्होंने कहा–

'सुनु सुग्रीव मैं मारिहउँ, बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गएँ न उबरहिं प्रान।।'

रामचरितमानस के इन प्रसंगों को पढ़कर गंभीर समस्या सामने खड़ी हो जाती है। क्या असुरारि ने उपास्यदेव त्रिपुरारी के लिए ऐसी बात कही है? कदापि नहीं। ऐसी स्थिति में परिस्थिति विवश करती है कि यदि वे शिव नहीं, तो आखिर उनसे भिन्न अन्य 'शिव' कौन?

शिव कौन?

क्या शिव अनेक हैं? यदि अनेक हैं, तो वे शिव कौन? स्कन्द पुराण में लिखा है–'भक्तवत्सल भगवान शंकर ने अपने भक्त की रक्षा करते हुए तीसरा नेत्र खोलकर, काल की ओर देखा। उनके देखते ही कालदेव तत्काल जलकर भस्म हो गए।'

रामचरितमानस में आया है कि शिव ने अपनी तीसरी आँख खोलकर कामदेव को जला दिया।

'तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा।।'

–बालकाण्ड

श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध, अध्याय १२ में लिखा है–'मोहिनी का एक-एक अंग मनोरम था। जहाँ आँखें लग जातीं, लगी ही रहतीं। यही नहीं, मन भी रमण करने लगता। उसको इस दशा में देखकर भगवान शंकर उसकी ओर अत्यन्त आकृष्ट हो गये। उन्हें मोहिनी भी अपने प्रति आसक्त जान पड़ती थी॥२४॥ उसने शंकर का विवेक छीन लिया। वे उसके हाव-भाव से कामातुर हो गए और भवानी के सामने ही लज्जा छोड़कर उसकी ओर चल पड़े॥२५॥ मोहिनी वस्त्रहीन तो पहले ही हो चुकी थी, शंकर को अपनी ओर आते देख बहुत लज्जित हो गई। वह एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की आड़ में जाकर छिप जाती और हँसने लगती; परन्तु कहीं ठहरती नहीं थी॥२६॥ भगवान शंकर की इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं रहीं, वे कामवश हो गए थे। अतः हथिनी के पीछे-पीछे हाथी की तरह वे दौड़ने लगे॥२७॥ उन्होंने अत्यन्त वेग से उसका पीछा करके पीछे से उसका जूड़ा पकड़ लिया और उसकी इच्छा न होने पर भी उसे दोनों भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया ॥२८॥ जैसे हाथी हथिनी का आलिंगन करता है, वैसे ही भगवान शंकर ने उसका आलिंगन किया। वह इधर-उधर खिसककर छुड़ाने की चेष्टा करने लगी। इसी छीना-झपटी में उसके सिर के बाल बिखर गए ॥२९॥ वास्तव में वह सुन्दरी भगवान की रची माया ही थी। उसने

किसी प्रकार शंकर के भुजापाश से अपने को छुड़ा लिया और बड़े वेग से भागी ॥३०॥ भगवान शंकर भी उन मोहिनी वेशधारी अद्भुतकर्मा भगवान विष्णु के पीछे-पीछे दौड़ने लगे। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उनके शत्रु कामदेव ने इस समय उनपर विजय प्राप्त कर ली है॥३१॥ कामुक हथिनी के पीछे दौड़नेवाले मनोमत्त हाथी के समान वे मोहिनी के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। यद्यपि भगवान शंकर का वीर्य अमोघ है, फिर भी मोहिनी की माया से वह स्खलित हो गया ॥३२॥ वीर्यपात हो जाने के बाद उन्हें अपनी स्मृति हुई॥''

जिज्ञासा होती है कि काल को और काम को जलाकर भस्मीभूत करनवाले शंकर कौन तथा काम के वशीभूत होकर मोहिनी के पीछे-पीछे दौड़ने वाले शंकर कौन?

महाभारत में लिखा है–'वैशम्पायनजी ने कहा–जनमेजय! महारथी एवं दृढ़निश्चयी अर्जुन हिमालय लाँघकर एक बड़े कँटीले जंगल में जा पहुँचे। वे डाभ (कुश) के वस्त्र, दण्ड, मृगछाला और कमण्डल धारण करके आनंदपूर्वक तपस्या करने लगे। पहले महीने में उन्होंने तीन-तीन दिन पर पेड़ों से गिरे पत्ते खाए, दूसरे महीने में छः-छः दिन पर और तीसरे महीने में पंद्रह-पंद्रह दिन पर। चौथे महीने में वे बाँह उठाकर पैर के अंगूठे की नोक के बल पर निराधार खड़े हो गए और केवल हवा पीकर तपस्या करने लगे। अर्जुन की कठोर तपस्या और स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने कहा–'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वर माँग लो।' अर्जुन ने कहा–भगवन! यदि आप प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं, तो मुझे आप अपना पाशुपतास्त्र दे दीजिए। वह ब्रह्मसिर अस्त्र प्रलय के समय जगत् का नाश करता है। उस अस्त्र से मैं भावी युद्ध में सबको जीत सकूँ, ऐसी कृपा कीजिए। भगवान शंकर ने कहा–'समर्थ अर्जुन! तुम्हें मैं अपना पाशुपतास्त्र देता हूँ, क्योंकि तुम उसके धारण, प्रयोग और उपसंहार के अधिकारी हो। इन्द्र, यमराज, कुबेर, वरुण और वायु भी उस अस्त्र के धारण, प्रयोग और उपसंहार में कुशल नहीं हैं, फिर मनुष्य उसे भला जान ही कैसे सकता है? परन्तु तुम इसे किसी के ऊपर सहसा छोड़मत देना। अल्पशक्ति मनुष्य के ऊपर प्रयोग करने पर यह जगत् का नाश कर डालेगा।' (सं० महाभारत, वनपर्व, गीता प्रेस गोरखपुर)

(महाभारत-युद्ध समाप्ति के पश्चात्) ''धृतराष्ट्र ने पूछा–'संजय! दुर्योधन को भीमसेन के द्वारा मारा गया देख पाण्डवों और सृञ्जयों ने क्या

किया?' संजय ने कहा–'महाराज! आपके पुत्र के मारे जानेपर श्रीकृष्ण सहित पाण्डवों, पांचालों तथा सृञ्जयों को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने दुपट्टे उछाल-उछालकर सिंहनाद करने लगे। तदन्तर, उन सभी वीरों ने आपकी छावनी में घुसकर खजाना, रत्नों की ढेरी तथा भंडार पर अधिकार कर लिया। चाँदी, सोना, मोती, मणि, अच्छे-अच्छे आभूषण, बढ़िया कम्बल, मृगचर्म तथा राज्य के बहुत से सामान उनके हाथ लगे। साथ ही, असंख्य दास-दासियों को भी उन्होंने अपने अधीन कर लिया। महाराज! उस समय आपके अक्षय धन का भंडार पाकर पाण्डव खुशी के मारे उछल पड़े, किलकारियाँ मारने लगे। इसके बाद आपके वाहनों को खोलकर वे वहीं विश्राम करने लगे। विश्राम के समय श्री कृष्ण ने कहा–आज की रात हमलोगों को अपनी मंगल के लिए छावनी के बाहर ही रहना चाहिए। उन्होंने परम पवित्र ओघवती नदी के किनारे वह रात व्यतीत की। (शल्य पर्व) ऐसा कहकर अश्वत्थामा रथ पर सवार हुआ और शत्रुओं की ओर चल दिया। उसके पीछे-पीछे कृपाचार्य और कृतवर्मा भी चले। वह रात्रि में ही जबकि सब लोग सोये हुए थे, पांडवों के शिविर में पहुँचा और उसके द्वार पर जाकर खड़ा हो गया। वहाँ उसने चंद्रमा और सूर्य के समान तेजस्वी एक विशालकाय पुरुष को दरवाजे पर खड़ा देखा। उस महापुरुष को देखकर रोमांच हो जाता था। वह व्याघ्रचर्म धारण किए था, ऊपर से मृगचर्म ओढ़े था तथा सर्पों का यज्ञोपवित पहने हुए था। उसकी विशाल भुजाओं में तरह-तरह के शस्त्र सुशोभित थे, बाजूबन्दों के स्थान में बड़े-बड़े सर्प बँधे थे तथा उसके मुँह से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रहीं थीं। उसके तेज की किरणों से शंख, चक्र और धारण करने वाले सैकड़ों-हजारों विष्णु प्रकट हो जाते थे।

समस्त लोकों को भयभीत करनेवाले उस अद्‌भुत पुरुष को देखकर भी अश्वत्थामा घबड़या नहीं, बल्कि उस पर दिव्य अस्त्रों की वर्षा-सी करने लगा। वह देव अश्वत्थामा के छोड़े हुए समस्त अस्त्रों को निगल गया। जब अश्वत्थामा के सब अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये, तो उसने इधर-उधर दृष्टि डाली। उसने देखा कि सारा आकाश विष्णुओं से भरा हुआ है। शस्त्रहीन अश्वत्थामा यह अत्यन्त अद्‌भुत दृश्य देखकर बड़ा ही दु:खी हुआ और.... .....। अत: अब मैं भगवान शंकर की शरण लेता हूँ..... ऐसा सोचकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रथ से उतर पड़ा और देवाधिदेव महादेवजी के शरणागत होकर इस प्रकार स्तुति करने लगा.....। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ऐसा

कहकर उस अग्नि के देदिप्यमान वेदी पर चढ़ गया और अपने प्राणों का मोह छोड़कर आग के बीच में आसन लगाकर बैठ गया। उसे हवि रूप से उर्ध्वबाहु होकर निश्चेष्ट बैठे देखकर भगवान शंकर ने हँसकर कहा–'श्रीकृष्ण ने सत्य, शौच, सरलता, त्याग, तपस्या, नियम, क्षमा, भक्ति, धैर्य, बुद्धि और वाणी के द्वारा मेरी यथोचित आराधना की है। इसलिए उनसे बढ़कर मुझे कोई भी प्रिय नहीं है। पांचालों की रक्षा करके भी मैंने उन्हीं का सम्मान किया है; किन्तु कालवश अब ये निस्तेज हो गये हैं। अब इनका जीवन शेष नही है।' ऐसा कहकर भगवान शंकर ने अश्वत्थामा को एक तेज तलवार दी और अपने आप को उसी के शरीर में लीन कर दिया। इस प्रकार उनसे आविष्ट होकर अश्वत्थामा अत्यन्त तेजस्वी हो गया। (सौप्तिक पर्व) संजय कहते हैं–राजन! अब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने शिविर में प्रवेश किया तथा कृपाचार्य तथा कृतवर्मा दरवाजे पर खड़े रहे। ...द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उस विशाल शिविर के द्वार से न जाकर बीच ही से घुस गया। वहाँ उसने देखा कि सब योद्धा युद्ध में थक जाने के कारण अचेत होकर सोये पड़े हैं। उसी अवस्था में उन सब पर आक्रमण कर अश्वत्थामा ने पाँचों पाण्डवों के पाँचों पुत्रों सहित सभी योद्धाओं को मौत के घाट उतार दिया।'' (सौप्तिक पर्व सं० महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर)

भगवान श्रीकृष्ण से आराधित तथा पांडव अर्जुन के महान तप द्वारा उपासित, जिन्होंने पांडवों के शिविर का रक्षण किया, वे शंकर कौन? और जिन्होंने अश्वत्थामा से प्रसन्न होकर, उनको तलवार देकर तथा उनके शरीर में प्रवेश कर पांडवों के पुत्रों सहित, शिविर में सोये समस्त योद्धाओं का भक्षण किया, वे शंकर कौन?

ऊपर लिखित घटनाओं के अध्ययन-मनन से स्वभाविक ही प्रश्नोदय होता है कि क्या शंकर दो हैं? यदि दो हैं तो हम किस शंकर का भजन करें–अर्जुन द्वारा पूजित शंकर का अथवा अश्वत्थामा द्वारा पूजित शंकर का ? यदि शंकर एक ही हैं, तो क्या ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि हमारे संरक्षण शंकर ही हमारे सर्वभक्षक हो जाएँगे? क्या कोई भी एकनिष्ठ भक्त अपने इष्ट से अपने अनिष्ट की कल्पना कर सकता है? अथवा, क्या कोई भी बुद्धिमान, ज्ञानवान या विचारवान व्यक्ति अपने आश्रितजन की अहित की बात सोच सकता है? यदि नहीं तो उपर्युक्त घटना कैसे घटी? यदि ऐसा हो सकता है, तो कहा जा सकता है कि देश की सुरक्षा हेतु सीमावर्त्ती क्षेत्र में जहाँ संरक्षक नियुक्त हैं, वे यदि उत्कोच (घूस) लेकर

अपने देश में घूसपैठ करने देते हैं, तो वे भगवान शंकर के समान ही काम करते हैं। अथवा, भारत की माँग के अनुसार यदि कोई राष्ट्र इसको सहायता देता हो और वही राष्ट्र भारत-अमित्र देश को भी माँग के अनुसार सहायता देकर उससे गुप्त रूप से मिल कर भारत के साथ युद्ध करता हो, तो वह भी भगवान शंकर का ही अनुकरण करता है, ऐसा कहना शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस दृष्टि से दोनों ही पूज्य, मानने योग्य होने चाहिए; किन्तु क्या यह उचित है? यदि नहीं, तो आखिर हम किस शंकर का पूजन, अर्चन, बन्दन और भजन करें?

क्या, 'शंकर-भजन' का अर्थ यह लिया जाये, जैसा कि रामचरितमानस में आया है? स्वयं भगवान श्रीराम ने शिवलिंग की स्थापना कर पूजन किया था और कहा था कि शिव के समान प्रिय मुझे अन्य दूसरा कोई नहीं है, जो शिवद्रोही होकर मेरा दास कहावे तो वह स्वप्न में भी मुझको पा नहीं सकता है, जो शंकर से विमुख होकर मेरी भक्ति चाहे तो वह नारकी, मूढ़ और अज्ञानी है, जो शंकर का प्रिय हो और मुझसे द्रोह करता हो अथवा शिवद्रोही होकर मेरा दास हो, तो वह नर कल्प पर्यन्त घोर नरक में निवास करेगा–

'शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।
संकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।
संकरप्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास।।'

भगवान श्रीराम ने भगवान शंकर को जो सम्मान दिया है, वही सम्मान भगवान शंकर ने भगवान राम को दिया है।

स्कन्द पुराण में लिखा है–'महादेवजी ने कार्तिकेय को छाती से लगाकर कहा–वत्स! जो मैं हूँ, वही भगवान विष्णु को जानना चाहिए तथा जो भगवान विष्णु हैं, वही मैं हूँ। जैसे दो दीपकों में प्रकाश की दृष्टि से कोई अंतर नहीं होता है, उसी प्रकार हमदोनों में भी किंचिन्मात्र अंतर नहीं है। स्कन्द! जो भगवान विष्णु से द्वेष करता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है, जो उनका अनुगमन करता है, वह मेरा भी अनुगामी है। जो ऐसा जानता है, वही मेरा वास्तविक भक्त है।'

शिव पुराण में नन्दिकेश्वर कहते हैं–'तदन्तर जगदम्बा पार्वती के साथ बैठे हुए गुरुवर महादेवजी ने उत्तराभिमुख बैठे हुए ब्रह्मा और विष्णु को पर्दा करनेवाले वस्त्र से आच्छादित करके उनके मस्तक पर अपना

करकमल रखकर धीरे-धीरे उच्चारण करके उन्हें उत्तम मंत्र का उपदेश किया। मंत्र-तंत्र में बताई हुई विधि के पालनपूर्वक तीन बार मंत्र का उच्चारण करके भगवान शिव के उन दोनों शिष्यों को मंत्र की दीक्षा दी। फिर उन दोनों शिष्यों ने गुरुदक्षिणा के रूप में अपने आप को ही समर्पित कर दिया और दोनों हाथ जोड़कर उनके समीप खड़े हो उन देवेश्वर जगद्गुरु का स्तवन किया।....अपने गुरु महेश्वर की स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णु ने उनके चरणों में प्रणाम किया।'

(विद्येश्वर संहिता, सं० शिव पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर)

भगवान शंकर की चर्चा अन्यान्य ग्रंथों में भी हम भिन्न-भिन्न रूपों में पाते हैं। रामचरितमानस के बालकाण्ड में प्रसंग आया है कि भगवान श्रीराम ने अपनी माता श्रीकौशल्याजी को तीन रूपों में–नररूप, देवरूप और विराट् रूप में दर्शन दिए। यथा–

'भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी।
षत महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी।।
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषण बनमाला नयन बिसाला सोभा सिन्धु खरारी।।'

उपर्युक्त छन्द में भगवान के नररूप और देवरूप का वर्णन है। विराट् रूप के लिए लिखा है–

देखरावा महतहि निज, अद्भुत रूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मंड।।

विराट् रूप भगवान के रोम-रोम में करोड़ो-करोड़ों ब्रह्माण्ड स्थित थे। एक ब्रह्माण्ड में एक ब्रह्मा, एक विष्णु और एक शिव निवास करते हैं। इस गणित के हिसाब से असंख्य ब्रह्माण्ड के असंख्य शिव हो जाते हैं। उन असंख्य शिवों में किन शिव की आराधना किस भाँति की जाए?

एक बार परमपूज्य गुरुदेव (महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज) ने अपने श्रीमुख से कहने की कृपा की थी–(पुस्तक का नाम मुझे स्मरण नहीं है,उसमें लिखा है।) 'एक बार देवलोक में शिव सभा हुई। उस सभा में सभी ब्रह्माण्ड के सभी शिव उपस्थित हुए। उनमें किन्हीं के एक मुख, किन्हीं के पाँच मुख, किन्हीं के दश मुख, किन्हीं के बीस मुख; इस प्रकार क्रमशः शतमुख, सहस्त्रमुख, लक्षमुख, कोटिमुख.....वाले शिवजी भी थे। सभी ने मिलकर नृत्य किया उस नृत्य में सबके नेत्रों से जो प्रेमाश्रु प्रवाहित हुए, उससे सुरसरि–देवनदी–गंगाजी प्रकट हुई।'

अब जिज्ञासा होती है, उपर्युक्त शिवों में किन शिव की शरण जाकर जन्म-मरण से मुक्ति पाई जाए?

भगवान शंकर को अनादि देव माना गया है। पौराणिक कथाओं के आधार पर भगवान विष्णु का अवतार समय-समय पर इस अवनीतल पर हुआ करता है। भगवान विष्णु की नाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति बताई गई है; किन्तु भगवान शिव के लिए इस तरह की चर्चा नहीं मिलती।

सत्ययुग, त्रेता अथवा द्वापर में जो भी शंकर रहे हों, अभी वर्तमान युग में व्यक्त रूप में वे कहीं दीखते नहीं, जिनके दर्शन, सत्संग और आराधन का लाभ लिया ला सके। सम्प्रति उनके लिंग का पूजन कर ही संतोष करना पड़ेगा।

भगवान विष्णु देवताओं के बीच यों बोले–'सृष्टि के आदि में मेरे और ब्रह्माजी के विवाद में भगवान शिव लिंग रूप में प्रकट हुए थे।' (स्कन्द पुराण मा० कु०) शिवपुराण में लिखा है–'नारायणदेव के साथ मेरी बातचीत आरंभ हुई। भगवान शिव, की लीला से वहाँ हमदोनों में कुछ विवाद छिड़ गया। इसी समय हमलोगों के बीच में एक महान अग्नि स्तंभ (ज्योतिर्यमय लिंग) प्रकट हुआ। मैंने और श्रीविष्णु ने क्रमशः ऊपर और नीचे जाकर उसके आदि अंत का पता लगाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया; परन्तु हमें कहीं भी उसका ओर-छोर नहीं मिला। मैं थककर ऊपर से नीचे लौट आया और भगवान विष्णु भी उसी तरह नीचे से ऊपर आकर मुझसे मिले। हमदोनों शिव की माया से मोहित थे। श्रीहरि ने मेरे साथ आगे-पीछे और अगल-बगल से परमेश्वर शिव को प्रणाम किया।' (रूद्र संहिता)

रामचरितमानस (बालकाण्ड) में भगवान श्रीराम को विष्णु का अवतार बताया गया है और अयोध्या काण्ड में लिखा है–

जगपेखन तुम देखनिहारे। बिधि हरि शंभु नचावनिहारे।।
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। अउर तुम्हहिं को जाननिहारा।।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होई जाई।।

और भी,

'विष्णु कोटि सम पालनकर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता।।'

अर्थात् हे राम! संसार दृश्य (तमाशा) और आप उसको देखने वाले तथा ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को नचाने वाले हैं। वे त्रिदेव भी आपके भेद को नहीं जानते हैं, फिर दूसरा कौन जानने वाला है? (आपको) वही जानता है, जिसको आप जना देते हैं। फिर आपको जानते ही वे आपसे निर्भेद हो

जाते हैं।

प्रश्न होगा– ब्रह्मा, विष्णु और शिव को नचानेवाले 'राम' कौन? तथा ब्रह्मा, विष्णु से पूजित 'शिव' कौन? राम से नचाये जानेवाले 'शिव' कौन? राम-पूजित 'शिव' कौन? शिव-पूजित 'राम' कौन? और शिव-पूजक 'राम' कौन?

स्कन्दपुराण में लिखा है–'जो विष्णु हैं, उन्हें शिव जानना चाहिए और जो शिव हैं, वे विष्णु ही हैं।' (माहेश्वर खण्ड-केदार खण्ड)

2. भगवान शिव द्वारा गुरु का सम्मान

रामचरितमानस में काकभुशुण्डिजी गरूड़जी को अपने पूर्वजन्म की कथा बतलाते हुए कहते हैं–'एक दिन मैं शिवजी के मंदिर में शिवनाम जप रहा था उसी समय गुरुजी वहाँ आए, पर अभिमान के मारे मैंने उठकर उनको प्रणाम नहीं किया। गुरुजी दयालु थे, (मेरा दोष देखकर भी) उन्होंने कुछ नहीं कहा, उनके हृदय में लेशमात्र भी क्रोध नहीं हुआ। पर गुरु का अपमान बहुत बड़ा पाप है, अतः महादेवजी उसे नहीं सह सके। मंदिर में आकाशवाणी हुई कि अरे हतभाग्य! मूर्ख! अभिमानी! यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नहीं है, वे अत्यन्त कृपालु चित्त के हैं और उन्हें (पूर्ण तथा) यथार्थ ज्ञान है, तो भी हे मूर्ख! तुझको मैं शाप दूँगा; (क्योंकि) नीति का विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। अरे दुष्ट! यदि मैं तुझे दण्ड न दूँ, तो मेरा वेद-मार्ग ही भ्रष्ट हो जाये। जो मुर्ख गुरु से ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं। फिर (वहाँ से निकलकर) वे त्रियक् (पशु, पक्षी आदि) योनियों में शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्मों तक दुःख पाते रहते हैं। अरे पापी! तू गुरु के सामने अजगर की तरह बैठा रहा। रे दुष्ट! तेरी बुद्धि पाप से ढँक गई है, (अतः) तू सर्प हो जा। अरे अधम से भी अधम! इस अधोगति को पाकर बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर रह।

शिव का भयानक श्राप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया। मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय में बड़ा संताप हुआ। प्रेम सहित दण्डवत करके ब्राह्मण श्रीशिवजी के सामने हाथ जोड़कर मेरी भयंकर गति (दण्ड) का विचार कर गद्गद् वाणी से विनती करने लगे।'

३. शिव का सगुण और निर्गुण स्वरूप

'नमामीशमीशान निर्वाणरूपं ।विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।।
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसार पारं नतोऽहं।।
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।।
चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।।
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं।।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपानिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं।।
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानंददाता पुरारी।।
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी।।
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। भजंतीह लोके परे वा नराणां।।
न तावद्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं।।
न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं।।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो।।'

हे मोक्षस्वरूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेदस्वरूप, ईशान दिशा के ईश्वर तथा सबके स्वामी श्रीशिवजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निजस्वरूप में स्थित त्रिगुणों से रहित (निर्गुण), भेद रहित, इच्छा रहित, चेतन आकाशरूप तथा आकाश को ही वस्त्ररूप में धारण करनवाले दिगम्बर (अथवा आकाश को भी आच्छादित करनवाले) आपको मैं भजता हूँ।

निराकार, ओंकार के मूल, तुरीय (तीनों अवस्थाओं से परे), वाणी ज्ञान और इन्द्रियों से परे, कैलासपति विकराल, महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणों के धाम, संसार से परे आप परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हुँ। जो हिमालय के समान गौरवर्ण तथा गंभीर हैं, जिनके शरीर मे करोड़ों कामदेवों की ज्योति एवं शोभा है, जिनके सिर पर सुन्दर नदी गंगाजी विराजमान हैं, जिनके ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा और गले में सर्प सुशोभित हैं।

जिनके कानों में कुण्डल हिल रहे हैं, सुन्दर भ्रुकुटी और विशाल नेत्र हैं। जो प्रसन्नमुख, नीलकंठ और दयालु हैं, सिंहचर्म का वस्त्र धारण

किये और मुण्डमाल पहने हैं, उन सबके प्यार और सबके नाथ श्रीशंकरजी को मैं भजता हूँ।

प्रचण्ड रूद्ररूप श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकार के शूलों (दुःखों) को निर्मूल करनेवाले, हाथ में त्रिशूल धाारण किए, भाव (प्रेम) के द्वारा प्राप्त होनेवाले भवानी के पति श्री शंकरजी को मैं भजता हूँ।

कलाओं से परे, कल्याणस्वरूप, कल्प का अन्त (प्रलय) करनवाले, सज्जनों को सदा आनंद देनेवाले, त्रिपुर के शत्रु, सच्चिदानंदघन, मोह के हरनेवाले, कामदेव के शत्रु, हे प्रभो! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये।

हे पार्वती के पति! मनुष्य जब तक आपके चरणकमलों को नहीं भजते, तब तक उन्हें न तो इहलोक और परलोक में सुख-शांति मिलती है और ने उनके तापों का नाश होता है। अतः हे समस्त जीवों के अन्दर (हृदय में) निवास करने वाले प्रभो! प्रसन्न होइये।

मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही। हे शम्भो! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! बुढ़ापा तथा जन्म (मृत्यु) के दुःखसमूहों से जलते हुए मुझ दुःखी की दुःख से रक्षा कीजिए। हे ईश्वर! हे शम्भो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

सर्वज्ञ शिवजी ने ब्राह्मण की विनती सुनी और मंदिर में आकाशवाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ! वर माँगो। ब्राह्मण ने कहा हे कृपानिधान! पहले मुझे अपने चरणों की भक्ति दीजिए और फिर मेरे इस शिष्य को शापमुक्तकर इसका कल्याण कीजिए। क्षमाशील ब्राह्मण की साधुताभरी वाणी सुनकर पुनः आकाशवाणी हुई–'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)।

४. शिवलिंग

रामचरितमानस में आया है– भगवान श्रीराम ने भगवान शंकर के लिंग की पूजा की, लेकिन किस लिंग की, किस विधि से पूजा की इसकी चर्चा वहाँ नहीं की गई है।

स्कन्दपुराण में काशी के अनेक लिंगों में अट्ठाइस प्रमुख लिंगों का वर्णन है। इतना ही नहीं इसी स्कन्दपुराण में एक सौ प्रकार के लिंगों का विवेचन कर, प्रत्येक लिंग की भिन्न-भिन्न मंत्र द्वारा पूजन विधि बताई गई है। साथ ही भिन्न-भिन्न पूजक के भिन्न-भिन्न द्रव्य के लिंग बताए गए हैं। यथा–ब्रह्माजी भगवान शिव के सुवर्णमय लिंग की आराधना करके उसके

जगत्प्रधान नाम का जप करते हैं। –माहेश्वर खण्ड-केदार खण्ड।
श्रीकृष्ण ने स्थल भाग में काले पत्थर का शिवलिग स्थापित करके ऊर्जित नाम से उसकी आराधना की। सनकादि महर्षियों ने अपने हृदय रूपी लिंग का जगद्गति नाम से पूजन किया। सप्तर्षियों ने दर्भांकुरमय लिंग का विश्वयोनि नाम से पूजन किया। देवर्षि नारद आकाश में ही लिंग की भावना करके उसे जगद्बीज नाम देकर उसकी आराधना करते। सूर्यदेव ताम्रलिंग की पूजा और विश्वसृग् नाम का जप करते। चन्द्रमा मुक्तामय लिंग की उपासना और जगत्पति नाम का जप करते। बृहस्पतिजी पुखराज मणि के लिंग की आराधना और विश्वयोनि का जप करते। शुक्राचार्य विश्वकर्मा नाम से प्रसिद्ध पद मराग मणिमय शिवलिंग की उपासना करते । श्रीरामचन्द्रजी ज्येष्ठ नाम का जप करते हुए वैदूर्यमय शिवलिंग की पूजा करते। रावण चमेली के फूल का शिवलिंग बनाकर सदुर्जय नाम का जप करता। गणेशजी आटे का शिवलिंग बनाकर कपर्दी नाम से उपासना करते। लक्ष्मीजी लेप्यलिंग का पूजन तथा हरिनुत्र नाम का जप करती हैं। योगी पुरुष सर्वभूतस्थ लिंग की उपासना और स्थूल नाम का जप करते हैं।...आदि।
(माहेश्वर खण्ड-कुमारिका खण्ड)

रामचरितमानस में आया है कि सेतु बाँध तैयार हो जाने पर भगवान श्रीराम ने शिवलिंग की स्थापना एवं पूजनकर लंका के लिए प्रस्थान किया। स्कन्दपुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रावण-वध के बाद भगवान ने शिवलिंग की पूजा की थी। इसके सत्यासत्य का निर्णय करे तो कौन?

स्कन्दपुराण के ब्रह्म खंड-सेतु माहात्म्य में लिखा है–''श्रीरामचंद्रजी ने हाथ जोड़ प्रणाम करके मुनियों से कहा–'मुनिवरो (ब्राह्मणो)! रावण के वध से मुझे जो पाप लगा है, उसका प्रायश्चित क्या है? मुझे बताइये।' मुनियों ने कहा–'आप यहाँ लोकसंग्रह के लिए शिवलिंग की प्रतिष्ठा कीजिए। इससे रावण के मारने से होनवाला दोष भी दूर हो जाएगा। महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी! अब तो पुण्यकाल बीत रहा है। अतः जानकीजी ने जो लीलापूर्वक बालू का शिवलिंग बनाया है, उसी को इस समय स्थापित कर दीजिए।' यह सुनकर श्रीरघुनाथजी ने शीघ्रतापूर्वक सेतु की सीमा में लिंगरूपधारी भगवान शिव की स्थापना की। उस समय लिंग में पार्वती सहित भगवान शंकर प्रत्यक्ष प्रकट हो गए थे।''

रामचरितमानस के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि श्रीराम ने पुरजन और प्रजागण को 'शंकर-भजन' करने का आदेश देने का अनुग्रह किया।

किन्तु किस शिव, शंकर या रुद्र का, किस द्रव्य के शिवलिंग का तथा किस मंत्र द्वारा, किस विधि से पूजन हो, यह बताने की कृपा उन्होंने नहीं की। सामान्यजन किस शिव, किस शंकर या किस रुद्र की पूजा किस भाँति करें? रुद्र भी एक नहीं, एकादश हैं। यथा–

''कपाली पिगलो भीमो विरुपाक्षो विलोहितः।
अजकः शासनः शास्ता शंभुश्चण्डो भवस्तथा॥''
(स्कन्दपुराण,माहेश्वर खण्ड-कुमारिका खण्ड)

संकर, शंकर, शंभु, शिव,रुद्र, महादेव, महेश्वर आदि शब्द 'भोला बाबा' के पर्यायवाची माने जाते हैं। रामचरितमानस के अध्येता इस विषय से सुपरिचित हैं कि गोस्वामीजी ने मानस में 'स' और 'श' में अंतर नहीं रखा है। इसलिए रामचरितमानस में 'शंकर' की जगह 'संकर' लिखा गया है। हम इन शब्दों के सहित इनसे संबंधित अन्य शब्दों पर विचार करें।

संकर= वह जिसकी उत्पत्ति भिन्न वर्ण या जाति के पिता और माता से हुई हो। दोगला। मिश्रण। शिव।

शंकर= मंगल करनेवाला। शिव का एक नाम जो कल्याण करनेवाला माना जाता है। महादेव। शम्भु।

शंभु= शिव। महादेव। ग्यारह रुद्रों में एक जो प्रधान रुद्र हैं। ब्रह्मा। विष्णु।

शिव= मंगल। कल्याण। क्षेम। हिन्दुओं के प्रसिद्ध देवता जो सृष्टि का संहार करनेवाले और पौराणिक त्रिमूर्ति के अंतिम देवता कहे गए हैं। वैदिक काल में यही रुद्र के रूप में पूजे जाते थे। पर पौराणिक काल में ये शंकर, महादेव और शिव आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। पुराणानुसार इनका रूप इस प्रकार है–इनके सिर पर गंगा, माथे पर चन्द्रमा तथा एक और तीसरा नेत्र, गले में साँप तथा बायें अंग में अपनी स्त्री को लिए हुए आदि।

महादेव=अथर्ववेद में अद्भुत क्षमता सम्पन्न आत्मा की चर्चा करते हुए उसे महोदव कहा गया है–'सोऽवर्धत स महानभवत् महादेवोऽभवत्।' अथर्ववेद १५१/३

रुद्र=एक प्रकार का गण देवता। इसकी उत्पत्ति सृष्टि के आरंभ में ब्रह्मा की भौंहों से हुई थी। ये क्रोधरूप माने जाते हैं और भूत, प्रेत, पिशाच आदि इन्हीं से उत्पन्न कहे जाते हैं। ये कुल मिलाकर ग्यारह हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं–अज, एकपाद, अहिव्रघ्न, पिनाकी, अपराजित, त्र्यंबक, महेश्वर, वृषाकपि, शंभु, हरण और ईश्वर।

गरुड़पुराण में इनके नाम इस प्रकार हैं–प्रजैकपाद, अहिव्रघ्न, त्वष्टा, विश्वरूपहर, बहुरूप, त्र्यंबक, उपराजित, वृषाकपि, शंभु, कदर्पी और रैवत।

कूर्मपुराण में लिखा है कि जब आरंभ में बहुत तपस्या करने पर भी ब्रह्मा सृष्टि उत्पन्न न कर सके, तब उन्हें बहुत क्रोध हुआ और उनकी आँखों में आँसू निकलने लगे। उन्हीं आँसुओं से भूतों और प्रेतों की उत्पत्ति हुई और तब उनके मुख से ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए। वे उत्पन्न होते ही जोर-जोर से रोने लगे थे। इसलिए इनका नाम रुद्र पड़ा था। कहा गया है कि इसी रूप में इन्होंने कामदेव को भस्म किया था। उमा और गंगा आदि के साथ विवाह किया था। आदि। रुद्र=भयंकर, डरावना, रौद्र रस।

अब लिंग शब्द के अर्थ पर धयान दें। 'लिंग' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं। यथा–

'लिंग्यते गम्यते येन तल्लिगं बुद्धयादि'

(कठोप० शां० भा०, अ० २ वल्ली ३)

जिसके द्वारा कोई वस्तु जानी जाती है, वह बुद्धि आदि लिंग कहलाती है।

न्यायशास्त्र में वह जिससे किसी का अनुमान हो। व्याकरण के अनुसार स्त्रीलिंग, पुल्लिग और नपुंसकलिंग। साख्य के अनुसार मूलप्रकृति। विकृति फिर प्रकृति में लय को प्राप्त होती है, इसी से प्रकृति को लिंग कहते हैं। मीमांसा में छह लक्षण जिनके अनुसार लिंग का निर्णय होता है, यथा– उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, अर्थवाद और उपपत्ति। वेदान्त दर्शन के अनुसार सूक्ष्म शरीर। ईश्वर का प्रतीक चिन्ह। लिंग चार प्रकार के होते हैं–संबद्ध, न्यस्त, सहवर्त्ती, और विपरीत। पुरुष का चिन्ह विशेष, जिसके कारण स्त्री से उसका भेद जाना जाता है। पुरुष की गुप्तेन्द्रिय शिरन। शिव की एक प्रकार की मूर्ति। एक पुराण का नाम।

५.शिव की पूजा लिंग में क्यों?

लिंग पुराण में लिखा है कि शिव के दो रूप हैं। निष्क्रिय और निर्गुण शिव अलिंग हैं और जगत् कारण रूप शिवलिंग है। अलिंग शिव से लिंग शिव की उत्पत्ति हुई है। शिव को लिंगी भी कहते हैं और वह इसलिए कि लिंग या प्रकृति शिव की है। इसप्रकार 'लिंग' जगत्कारण रूप

शिव का प्रतीक है।

पद्मपुराण में शिव के इस रूप के संबंध में यह कथा है–''एक बार मंदराचल पर ऋषियों ने बड़ा भारी यज्ञ किया। वहाँ उन्होंने चर्चा छेड़ी कि ऋषियों का पूज्य देवता किसे बनाना चाहिए। अंत में यह निश्चय हुआ कि शिव, विष्णु और ब्रह्मा तीनों के पास चलकर इसका निर्णय किया जाये। सब ऋषि पहले शिव के पास गये, पर उस समय वे पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, इससे नन्दी ने द्वार पर उन्हें रोक दिया। ऋषियों को प्रतीक्षा करते बहुत काल बीत गया। इसपर भृगु ऋषि ने क्रोध करके शाप दिया। हे शिव! तुमने काम-क्रीड़ा के वशीभूत होकर हमारा अपमान किया है, इससे तुम्हारी मूर्ति योनि-लिंग रूप होगी और तुम्हारा नैवेद्य कोई ग्रहण नहीं करेगा।''

किसी समय जगत्कारण के रूप में देवता या ईश्वर की उपासना के लिए लिंग का ग्रहण प्राचीन मिश्र, अरब, यहुद, यूनान और रोम आदि देशों में भी था। प्राचीन यूनानी लिंग को 'फेलस' कहते थे। यहुदियों में बाल देवता की प्रतिष्ठा लिंग रूप में ही थी। बाबूल (बेबिलोन) के खंडहरों में मंदिरों के अंदर बहुत से लिंग निकलते हैं, जो भारतीयों के शिव से बिल्कुल मिलते हैं। पर प्राचीन आर्यों में इसप्रकार की उपासना का पता नहीं लगता। वैदिक समय में कुछ अनार्य जातियों में 'लिंग' पूजा प्रचलित थी। इसका कुछ आभास वेद के एक मंत्र में मिलता है। उसमें 'शिश्न देवाः' के प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट किया गया है। पर कब से वह शिव की प्रतिमा के रूप में ग्रहित हुआ, इसका ठीक-ठीक पता नहीं है। इसके अतिरिक्त 'मोहनजोदड़ो' और 'हड़प्पा' की खुदाई से प्राप्त अवशेषों में लिंग या उससे मिलते-जुलते आकार की उपास्य प्रतिमा मिली है। (हिन्दी शब्द सागर, आठवाँ भाग, नवीन संस्करण १९७१ ई०)

काल ने भगवान शंकर की स्तुति की, सभी देवताओं और असुरों ने अपने में लीन करने के कारण आपके स्वरूप को लिंग कहा है।

संक्षिप्त शिवपुराण (विद्येश्वर संहिता) में लिखा है–ऋषियों ने पूछा–मूर्ति में ही सर्वत्र देवताओं की पूजा होती है (लिंग में नहीं), परन्तु भगवान शिव की पूजा सब जगह मूर्ति में और लिंग में क्यों की जाती है?

सूतजी ने कहा–मुनीश्वरो! तुम्हारा यह प्रश्न तो बड़ा ही पवित्र और अत्यन्त अद्भुत है। इस विषय में महादेव ही वक्ता हो सकते हैं। दूसरा कोई पुरुष कभी और कहीं भी इसका प्रतिपादन नहीं कर सकता। इस प्रश्न के समाधान के लिए भगवान शिव ने जो कुछ कहा है और उसे मैंने गुरुजी

के मुख से जिस प्रकार सुना है, उसी तरह क्रमशः वर्णन करूँगा। एक मात्र भगवान शिव ही ब्रह्मरूप होने के कारण 'निष्कल' (निराकार) हो गये हैं। भगवान रूप होने के कारण उन्हें 'सकल' भी कहा गया है। इसलिए वे सकल और निष्कल दोनों हैं। शिव के निष्कल-निराकार होने के कारण ही उनकी पूजा का आधारभूत लिंग भी निराकार ही प्राप्त हुआ है अर्थात् शिवलिंग शिव के निराकार स्वरूप का प्रतीक है। इसी तरह शिव के सकल या साकार होने के कारण उनकी पूजा का आधारभूत विग्रह साकार प्राप्त होता है अर्थात् शिव के साकार विग्रह उनके साकार स्वरूप का प्रतीक होता है। सकल और अकल (समस्त अंग-आकार सहित-साकार और अंग-आकार से सर्वथा रहित-निराकार) रूप होने से ही वे ब्रह्म शब्द से कहे जानेवाले परमात्मा हैं। यही कारण है कि सब लोग लिंग (निराकार) और मूर्ति (साकार) दोनों में ही सदा भगवान शिव की पूजा करते हैं। शिव से भिन्न जो दूसरे-दूसरे देवता हैं, वे साक्षात् ब्रह्म नहीं हैं। इसलिए कहीं भी उनके लिए निराकार लिंग नहीं उपलब्ध होता।

पूर्वकाल में बुद्धिमान ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनि ने मंदराचल पर नन्दिकेश्वर से इसी प्रकार का प्रश्न किया था। सनत्कुमार बोले—भगवन! शिव से भिन्न जो देवता हैं, उन सबकी पूजा के लिए सर्वत्र प्रायः वेर (मूर्ति) मात्र ही अधिक संख्या में देखा और सुना जाता है। केवल भगवान शिव की ही पूजा में लिंग और वेर दोनों का उपयोग देखने में आता है। अतः कल्याणमय नन्दिकेश्वर! इस विषय में जो तत्व की बात हो, उसे मुझे इस प्रकार बताइये, जिससे अच्छी तरह समझ में आ जाए।

नन्दिकेश्वर ने कहा—निष्पाप ब्रह्मकुमार! आपके इस प्रश्न का हमलोगों के द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता, क्योंकि यह गोपनीय विषय है और लिंग साक्षात् ब्रह्म का प्रतीक है, तथापि आप शिव भक्त हैं, इसलिए इस विषय में भगवान शिव ने जो कुछ बताया है, उसे ही आपके समक्ष कहता हूँ। भगवान शिव ब्रह्मस्वरूप और निष्कल (निराकार) हैं, इसलिए उनकी पूजा में निष्कल लिंग का उपयोग होता है। सम्पूर्ण वेदों का यही मत है।

महेश्वर (ब्रह्मा और विष्णु से) बोले—पुत्रों! आज का दिन एक महान दिन है। इसमें तुम्हारे द्वारा जो आज मेरी पूजा हुई, इससे मैं तुमलोगों पर बहुत प्रसन्न हूँ। इसी कारण यह दिन परम पवित्र और महान से महान होगा। आज की यह तिथि 'शिवरात्रि' के नाम से विख्यात होकर मेरे लिए

परम प्रिय होगी। इस समय में जो मेरे लिंग (निष्कल—अंग आकृति से रहित निराकार स्वरूप के प्रतीक), वे वेर (सकल—साकार रूप के प्रतीक विग्रह) की पूजा करेगा, वह पुरुष जगत् की सृष्टि और पालन आदि कार्य भी कर सकता है। जो शिवरात्रि को दिन-रात निराहार एवं जितेन्द्रिय रहकर अपनी भक्ति के अनुसार निश्चल भाव से मेरी यथोचित पूजा करेगा, उसको मिलने वाले फल का वर्णन सुनो।

एक वर्ष तक निरंतर मेरी पूजा करने पर जो फल मिलता है, वह सारा फल केवल शिवरात्रि को मेरी पूजा करने से मनुष्य तत्काल प्राप्त कर लेता है। जैसे पूर्ण चंद्रमा का उदय समुद्र की वृद्धि का अवसर है, उसी प्रकार यह शिवरात्रि की तिथि मेरे धर्म की वृद्धि का समय है। इस तिथि में मेरी स्थापना आदि का मंगलमय उत्सव होना चाहिए। पहले मैं जब ज्योतिर्मय स्तंभरूप से प्रकट हुआ था, वह समय मार्गशीर्षमास में आर्द्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णमासी या प्रतिपदा है। जो पुरुष मार्गशीर्षमास में आर्द्रा नक्षत्र होने पर पार्वती सहित मेरा दर्शन करता है अथवा मेरी मूर्ति या लिंग की ही झाँकी करता है, वह मेरे लिए कार्तिकेय से भी अधिक प्रिय है। उस शुभ दिन मेरे दर्शन मात्र से पूरा फल प्राप्त होता है। यदि दर्शन के साथ-साथ मेरा पूजा भी किया जाये, तो इतना अधिक फल प्राप्त होता है कि उसका वाणी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता।

वहाँ पर मैं लिंग रूप से प्रकट होकर बहुत बड़ा हो गया था। अतः उस लिंग के कारण यह भूतल 'लिंग स्थान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जगत् के लोग इसका दर्शन और पूजन कर सकें, इसके लिए यह अनादि और अनन्त ज्योतिःस्तंभ अथवा ज्योतिर्मय लिंग अत्यन्त छोटा हो जायेगा। यह लिंग सब प्रकार के भोग सुलभ कराने वाला तथा भोग और मोक्ष का एकमात्र साधन है। मेरे दो रूप हैं—'सकल' और 'निष्कल'। दूसरे किसी के ऐसे रूप नहीं हैं। पहले मैं स्तंभ रूप में प्रकट हुआ; फिर अपने साक्षात रूप में। 'ब्रह्मभाव' मेरा 'निष्कल' रूप है और 'महेश्वर भाव' सकल रूप। ये दोनों मेरे ही सिद्ध रूप हैं। मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूँ। कलायुक्त और अकल मेरे ही स्वरूप हैं। ब्रह्मरूप होने के कारण मैं ईश्वर भी हूँ। जीवों पर अनुग्रह आदि करना मेरा कार्य है। ब्रह्मा और केशव! मैं सबसे वृहत् और जगत् की वृद्धि करने वाले होने के कारण 'ब्रह्म' कहलाता हूँ। सर्वत्र सम-रूप से स्थित और व्यापक होने से मैं ही सबकी आत्मा हूँ।''

शिव के शब्दमय शरीर का दर्शन

'ब्रह्माजी कहते हैं–'मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार हम दोंनों देवता गर्व रहित हो निरंतर प्रणाम करते रहे। हमदोनों के मन में एक ही अभिलाषा थी कि इस ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हुए परमेश्वर प्रत्यक्ष दर्शन दें। भगवान शंकर दोनों के प्रतिपालक, अहंकारियों का गर्व चूर्ण करनेवाले तथा अविनाशी प्रभु हैं। वे हमदोनों पर दयालु हो गए। उस समय वहाँ उन सुरश्रेष्ठ से, 'ओउम्, ओउम्' ऐसा शब्दरूप नाद प्रकट हुआ, जो स्पष्ट रूप से सुनाई देता है। वह नाद प्लुत स्वर में अभिव्यक्त हुआ था। जो प्रकट होने वाले उस शब्द के विषय में 'यह क्या है' ऐसा सोचते हुए समस्त देवताओं के आराध्य भगवान विष्णु मेरे साथ संतुष्ट चित्त से खड़े रहे। वे सर्वथा वैर-भाव से रहित थे। उन्होंने लिंग की दक्षिण भाग में सनातन आदि वर्ण आकार के दर्शन किये। उत्तर भाग में उकार का, मध्य भाग में मकार का और अंत में 'ओउम्' इस नाद का साक्षात दर्शन एवं अनुभव किया। दक्षिण भाग में प्रकट हुए आदि वर्ण अकार को सूर्य मंडल के समान तेजोमय देखकर जब उन्होंने उत्तर भाग में दृष्टि पात किया, तब वहाँ उकार वर्ण अग्नि के समान दीप्तिमान दिखाई दिया। मुनिश्रेष्ठ! इसी तरह उन्होंने मध्य भाग में मकार को चंद्रमंडल के समान उज्ज्वल कान्ति से प्रकाशमान देखा। तदन्तर जब उसके ऊपर दृष्टि डाली तब शुद्ध स्फटिक मणि के समान निर्मल प्रभा से युक्त, तुरीयातीत, अमल, निष्कल, निरुपद्रव, निर्द्वन्द्व, अद्वितीय, शून्यमय, बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से रहित, जगत् के भीतर और बाहर स्वयं ही स्थित, आदि, मध्य और अंत से रहित, आनंद की आदि कारण तथा सबके परम आश्रय, सत्य, आनंद और अमृत स्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार किया।

ऋषि के द्वारा परमेश्वर श्रीविष्णु ने जाना कि इस शब्दब्रह्ममय शरीर वाले परम लिंग के रूप में साक्षात् परब्रह्म स्वरूप महादेवजी ही यहाँ प्रकट हुए हैं। ये चिन्ता रहित (अथवा अचिन्त्य) रुद्र हैं। जहाँ जाकर मन सहित वाणी उसे प्राप्त किए बिना ही लौट आती है, उस परब्रह्म परमात्मा शिव का वाचक एकाक्षर (प्रणव) ही है, वे इसके वाच्यार्थ रूप हैं। वह परम कारण ऋत, सत्य, आनंद एवं अमृत स्वरूप परात्पर परब्रह्म एकाक्षर का वाच्य है। प्रणव के अक्षर 'अकार' से जगत् के बीजभूत अण्डजन्मा भगवान ब्रह्मा का बोध होता है, उसके दूसरे एक अक्षर उकार से परम कारणरूप श्रीहरि शिव का ज्ञान होता है। अकार सृष्टिकर्ता है, उकार मोह में डालनेवाला है और मकार नित्य अनुग्रह करनेवाला है। मकार-बोध

सर्वव्यापी शिव बीजी (बीज मात्र के स्वामी) हैं और अकार संज्ञक मुझ ब्रह्मा को 'बीज' कहते हैं। उकार नामधारी श्रीहरि योनि हैं। प्रधान और पुरुष के भी ईश्वर जो महेश्वर हैं, वे बीजी, बीज और योनि भी हैं। उन्हीं को नाद कहा गया है।''

(संक्षिप्त शिवपुराण, रुद्र संहिता से)

महालिंग और शंकर-भजनः/ गुप्तमत

लिंग और शिवलिंग के अतिरिक्त योगशिखोपनिषद् (जो कि कृष्ण यजुर्वेद का ही अंश है) में महालिंग की चर्चा मिलती है। प्रसंग इस प्रकार है–

''एक बार श्री चतुरानन ने श्री पंचानन से जिज्ञासा की –संसार के समस्त जीव त्रयताप से सतत् संतापित होते रहते हैं। हे त्रिशूलपाणि! इन त्रयशूलों को निर्मूल करने का यदि कोई निर्मूल उपाय हो तो आप बताने की कृपा करें।

उमापति ने उत्तर दिया– हे प्रजापति! भव-बंधन से विमुक्त होने के लिए कोई योग और कोई ज्ञान को स्थान देते हैं, किन्तु मेरे विचार से

'योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि।।१३॥
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्।।१३.५॥'

(अध्याय-१)

योगहीन ज्ञान मोक्षप्रद भला कैसे हो सकता है? उसी तरह ज्ञान रहित योग भी मोक्ष कार्य में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए ज्ञान और योग, दोनों का अभ्यास दृढ़ता के साथ मुमुक्षु को करना चाहिए।''

इसी क्रम में उन्होंने यह कहा है–

'बिन्दुनाद महालिगं शिवशक्तिनिकेतनम्।।१६७॥
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्व देहिनाम्।।१६७.५॥

विन्दुनाद महालिंग है और शिवशक्ति का घर है। इस देह को शिवालय कहते हैं। सभी प्राणियों को इसमें सिद्धि मिलती है। इसी योगशिखोपनिषद् के पंचम अध्याय में लिखा है–

'बिन्दुनाद महालिगं विष्णुलक्ष्मीनिकेतनम्।
देहं विष्णवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।४॥

विन्दुनाद-रूप जो महालिंग है, वही विष्णु और लक्ष्मी का घर है। इस देह को विष्णु मंदिर (ठाकुरबाड़ी) कहते हैं। सभी प्राणियों को इसमें सिद्धि मिलती है।

ब्रह्माजी ने भगवान शिव के कथन का मात्र श्रवण और मनन ही नहीं किया, अपितु निदिध्यासन करके अनुभव ज्ञान भी प्राप्त किया। इसलिए 'शंकर-भजन' का अर्थ 'शंकर प्रदत्त' भजन यानी शंकर का दिया हुआ 'भजन भेद' भी किया जा सकता है।

ब्रह्माजी ने महेश्वर के ज्योति और नाद (शब्दब्रह्म) दोनों रूपों के दर्शन कर अमृत स्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार भी किया।

भगवान श्रीराम द्वारा कथित 'औरउ एक गुपुत मत...॥' दोहे का एक-एक चरण बड़ा रहस्यमय जान पड़ता है। 'गुप्तमत' क्या है, 'कर जोडि़' शब्द का अर्थ क्या है तथा 'संकर भजन' का तात्पर्य क्या है? आदि। इन विषयों पर हम गंभीरतापूर्वक विचार करें।

कोई भी गुप्त बात, जो किसी व्यक्ति से कही जाती है, वह स्पष्ट नहीं, बल्कि सांकेतिक भाषा में कही जाती है। उदाहरणार्थ, जब पाँचों भाई पाण्डव अपनी पूज्या माता कुन्तीजी के साथ वारणावत के लिए प्रस्थान कर रहे थे, (जहाँ दुर्योधन ने पाण्डवों को जलाने के लिए लाक्षागृह बनवाया था) तो उस समय विदुरजी ने युधिष्ठिरजी से सांकेतिक भाषा में कहा था। इस विषय का वर्णन महर्षि वेदव्यासजी ने महाभारत के आदिपर्व अध्याय १४४ में इस प्रकार किया है–

प्राज्ञः प्राज्ञप्रलाप्रज्ञः प्रलाप्रज्ञमिदं वचः।
प्राज्ञं प्राज्ञः प्रलाप्रज्ञः प्रलाप्रज्ञं वचोऽब्रवीत्।।२०॥

विदुरजी बुद्धिमान तथा मूढ़-म्लेच्छों की निरर्थक-सी प्रतीत होनेवाली भाषा के भी ज्ञाता थे। इसी प्रकार युधिष्ठिरजी भी उस म्लेच्छ भाषा को समझ लेनेवाले तथा बुद्धिमान थे। अतः उन्होंने युधिष्ठिर से ऐसी कहने योग्य बात कही, जो म्लेच्छ भाषा के जानकार एवं बुद्धिमान पुरुष को उस भाषा में कहे हुए रहस्य का ज्ञान करा देनेवाली थी, किन्तु जो उस भाषा से अनभिज्ञ पुरुष को वास्तविक अर्थ का बोध नहीं कराती थी।

यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम्।
विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद् यथा।।२१॥

जो शत्रु की नीतिशास्त्र का अनुसरण करनेवाली बुद्धि को समझ लेता है, वह उसे समझ लेनेपर कोई ऐसा उपाय करे, जिससे वह यहाँ

शत्रु-जनित संकट से बच सके।

अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्तनम्।
यो वेत्ति न तु तं घ्नन्ति प्रतिघातविदं द्विषः।।२२॥

एक ऐसा तीखा शस्त्र है, जो लोहे का बना तो नहीं है; परन्तु शरीर को नष्ट कर देता है। जो उसे जानता है, ऐसे उस शस्त्र के आघात से बचने का उपाय जाननेवाला पुरुष को शत्रु नहीं मार सकते। यहाँ संकेत से यह बात बताई गई है कि शत्रुओं ने तुम्हारे लिए एक ऐसा भवन तैयार करवाया है, जो आग को भड़काने वाले पदार्थ से बना है।

कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः।
न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति।।२३॥

घास-फूस तथा सूखे वृक्षोंवाले जंगल को जलाने और सर्दी को नष्ट कर देनेवाली आग विशाल वन में फैल जाने पर भी बिल में रहनेवाले चूहे आदि जन्तुओं को नहीं जला सकती– यों समझाकर जो अपनी रक्षा का उपाय करता है, वही जीवित रहता है। (तात्पर्य यह है, वहाँ जो तुम्हारा पार्श्ववर्ती होगा, वह पुरोचन ही तुम्हें आग में जलाकर नष्ट करना चाहता है। तुम उस आग से बचने के लिए एक सुरंग तैयार कर लेना।)

नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः।
नाधृतिर्बुद्धिमाप्नोति बुध्यस्वैवं प्रबोधितः।।२४॥

जिसे आँखें नहीं है, वह मार्ग नहीं जान पाता, अंधे को दिशाओं का ज्ञान नहीं होता और जो धैर्य खो देता है, उसे सद्बुद्धि प्राप्त नही होती। इस प्रकार मेरे समझाने पर तुम मेरी बातों को भलीभाँति समझ लो। (अर्थात् दिशा आदि का ठीक ज्ञान पहले ही कर लेना, जिससे भटकना न पड़े।)

अनाप्तैर्दत्तमादत्ते नरः शस्त्रामलोहजम्।
श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात्।।२५॥

शत्रुओं के दिये हुए बिना लोहे के बने शस्त्र को जो मनुष्य ग्रहण कर लेता है, वह साही के बिल में घुसकर आग से बच जाता है। (तात्पर्य यह कि उस सुरंग से यदि तुम बाहर निकल जाओगे, जो लाक्षागृह में लगी हुई आग से बच सकोगे।

चरन् मार्गान् विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः।
आत्मना चात्मनः पंच पीडयन् नानुपीड्यते।।२६॥

मनुष्य घूम-फिरकर रास्ते का पता लगा लेता है, नक्षत्रों से दिशाओं को समझ लेता है तथा जो अपनी पाँचों इन्द्रियों का स्वयं ही दमन करता

है, वह शत्रु से पीड़ित नहीं होता। (अर्थात् यदि तुम पाँचों भाई एकमत रहोगे, तो शत्रु तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।)

'खग जाने खग ही की भाषा' की भाँति विदुरजी की बातें युधिष्ठिरजी ने समझी। उनके अतिरिक्त कुन्ती और अन्य चार भाई पाण्डव भी नहीं समझ सके, यद्यपि वे लोग भी वहाँ उपस्थित थे। उसी प्रकार भगवन्त की बात सन्त ही समझ सकते हैं, अन्य नहीं, क्योंकि–

'संत भगवन्त अन्तर निरंतर नहीं किमपि,
मति विमल कह दास तुलसी।' (विनय पत्रिका)

८.बाइबिल में गुप्तमत

किसी गुप्त विषय में रहस्यमय ढंग से कहने का प्रचलन वैदिक संतों में तो है ही, ईसाई और इस्लाम धर्म के संतों में भी इसकी झाँकी हम पाते हैं। आवश्यकता है, संतों से सद्युक्ति प्राप्त कर, धर्मग्रंथों का मनोयोग पूर्वक अध्ययन, मनन और निदिध्यासन कर अनुभव ज्ञान प्राप्त करने की। अन्तस्साधना से संबंधित कुछ रहस्यमयी बातें हम बाइबिल से यहाँ उद्धृत करना चाहेंगे। यथा–

जैम सपहीज वि जीम इवकल पे जीम मलमण पि जीमतम वितम जीपदम मलम इम ेपदहसमए जीम ीवसम इवकल ींसस इम निसस वि सपहीज (ैज डंजीमनए ठपइसम छमू ज्मेजंउमदज) बीण ६ए चंतं.२२

शरीर का दीपक आँख है; इसलिए यदि तेरी आँख एक हो तो तेरा सारा शरीर उजियाला होगा।

(सत्संग योग, द्वितीय भाग, प्रकाशक–अखिल भारतीय संतमत सत्संग महासभा, महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर–३)

धर्म शास्त्र नाम्नी पुस्तक में दिया गया अनुवाद–

''शरीर का दीपक आँख है, इसलिए यदि तेरी आँख निर्मल हो तो तेरा सारा शरीर भी उजियाला होगा।''

(प्रकाशक– बायबल सोसायटी ऑफ इण्डिया २०६, महात्मा गाँधी रोड, बंगलोर–१)

९.कुरानशरीफ में गुप्तमत

१.कुरानशरीफ में लिखा है–''(ऐ पैगम्बर) जब मूसा में (खिज्र

की मुलाकात के इरादे से चले तो उन्होंने) अपने नौकर (यूशा) से कहा कि जब तक मैं दोनों नदियों के मिलन की जगह पर न पहुँच लूँ, बराबर चलूँगा या मैं करनून तक चला ही जाऊँगा (६०), फिर जब यह दोनों उन दो नदियों के मिलने की जगह पर पहुँचे, तो दोनों अपनी मछली भूनी हुई भूल गए, तो मछली ने नदी में सुरंग की तरह का अपना रास्ता बना लिया।'' (६१) सूरे कहफ, पन्द्रहवाँ पारा, पृष्ठ ३०३

[तर्जुमा कुरान शरीफ, श्री अहमद बशीर, एम० ए० कामिल, दबीर कामिल, मौलवी (फिरंगी महल) प्रकाशक–श्री प्रभाकर साहित्यालोक, रानी कटरा, लखनऊ, प्रथम संस्करण]

२. कुरआन मजीद में लिखा ह* ''जब मूसा ने अपने सेवक से कहा था कि मैं अपनी यात्रा समाप्त न करूँगा, जबतक कि दोनों दरियाओं के संगम पर न पहुँच जाऊँ, अन्यथा मैं एक लम्बे समय तक चलता रहूँगा। तो जब वे उनके संगम पर पहुँते तो अपने मछली से गाफिल हो गये और वह निकलकर इस तरह दरिया में चली गई जैसे कोई सुरंग लगी हो।'' सूरा १८ अल-कहफ, पारा १५

(अनूदित कुरआन मजीद, संक्षिप्त टीका सहित, सैय्यद अबुल आला मौदूही, हिन्दी अनुवाद मुहम्मद फारूक खाँ, मरकजी मकतबा इस्लामी दिल्ली-६, हिन्दी एडीसन, तीसरी बार १९९२)

३.कुरान मजीद** में हम पाते हैं ''(६०) और याद करो जबकि मूसा ने अपने युवक सेवक से कहा: जब तक कि मैं दो दरियाओं के संगम पर न पहुँच जाऊँ, हटने का नहीं, अन्यथा मैं एक दीर्घ समय तक चलता रहूँगा। (६१) तो जब वे संगम पर पहुँचे, दोनों (दरियाओं) के बीच, तो वे अपनी मछली भूल गए और उस (मछली) ने दरिया में सुरंग बनाकर अपनी राह ली।'' १८ अल-कहफ, पारा १५ पृष्ठ ५३५

[कुरआन मजीद, हिन्दी अनुवाद सटीक, मुहम्मद फारुख खाँ, अंग्रेजी अनुवाद मारमाड्यूक पिक्थाल, मक्तबा अल हसनात, रामपुर (उ०प्र०), जनवरी १९६० तीसरी बार]

बाइबिल में वर्णित 'एक आँख' तथा कुरान में लिखित 'दो नदियाँ' 'दोनों का संगम' 'मछली' और 'सुरंग' ये सभी बातें रहस्यमयी हैं। जिनको सौभाग्य से पूरे गुरु (मुर्शिदे कामिल) मिले होते हैं और जिन्होंने गुरु

निर्देशानुसार सच्ची साधना की है। फिर भी, जिन्होंने महापुरुषों का सत्संग-लाभ किया है, वे भी आंशिक रूप में समझ सकते हैं।

मेरे विचार में 'पदहसम का अर्थ व्दम (एक) होना चाहिए। एक आँख यानी तीसरी आँख (ज्जपतक मलम)। इसको 'शिवनेत्र' 'रुद्राक्ष' आदि नामों से संतों ने अभिहित किया है। आध्यात्मिक दृष्टि से–'दो नदियाँ' यानी इड़ा (गंगा) और पिंगला (यमुना)। अपने अंदर में इन दोनों नदियों (धाराओं) का संगम स्थान–शहरग (सुषुम्ना)। यहाँ सुरंग दशवाँ द्वार है, जहाँ से मछली (सुरत) निकलकर दरिया (चेतनधारा) में चली जाती है।

इस्लाम धर्म की मूल पुस्तक कुरान शरीफ में चर्चित दो नदियाँ, दोनों का संगम और मछली से संबंधित बातें हम वैदिक धर्मग्रंथों एवं संतों की वाणियों में भी पाते हैं। यथा–

इड़ा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
इड़ा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती।।

–ज्ञान संकलिनी तंत्र

देह में इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाम की तीन प्रधान नाड़ियाँ हैं। इड़ा गंगा, पिंगला यमुना और इड़ा-पिंगला के बीच में रहनेवाली सुषुम्ना सरस्वती नदी के नाम से कही जाती है।

त्रिवेणीसंगमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सर्व्वपापैः प्रमुच्यते।।

–ज्ञान संकलिनी तंत्र

देह में जहाँ उल्लिखित तीनों नाड़ियों का संगम है, उस स्थान को गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम–त्रिवेणी कहते हैं। यह त्रिवेणी सर्वप्रधान तीर्थ कहकर गिनी जाती है। इस तीर्थ में स्नान करने से सब पापों से मुक्ति मिलती है।

'गंग जमुन सरस्वती संगम पर संध्या करु नित भाई।'

–महर्षि मँहीं पदावली

'विमल विमल अनहद ध्वनि बाजै, सुनत बने जाको ध्यान लगे।
सिंगी नाद संखध्वनि बाजै, अबुझा मन जहाँ केलि करे।।
दह की मछली गगन चढ़ि गाजै, बरसत अमीरस ताल भरे।।

–संत कबीर साहब

'है अथाह थाह सबहीन में, दरिया लहर समानी हो।
जाल डारि का करिहौं धीमर, मीन के हूवै गै पानी हो।।
पंछीक छोज औ मीन के मारग, ढूढ़े न कोई पाया हो।
कहै कबीर सतगुरु मिल पूरा, भूले को राह दिखाया हो।।'

–संत कबीर साहब

'गिरि पर्वत की माछरी भव सागर आया हो।
कहै कबीर धर्मदास से जम बंशी बजाया हो।।'

–धरनी धरमदास

'जो जेहि कला कुशलता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ जग भारी।।'

–गोस्वामी तुलसीदास

'मन मीन दिल जब दीन देखै। चीन्ह मधुकर सिर धरै।।
आली डगर मिलि जब सुरति सरजू। कँवल दल चल पद परै।।'

–संत तुलसी साहब

सुखमन के झीना नाल से अमृत की धारा बही रही।
मीन सुरत धार धर भाटा से सीरा चढ़ि रही।।'

–महर्षि मँहीं पदावली

१०.गुप्तमत की व्याख्याः महर्षि मँहीं के शब्दों में

अब हम भगवन्त श्रीराम के 'गुप्तमत' या गोपनीय बात को महर्षि मँहीं परमहंसजी महाराज के शब्दों में समझना चाहेंगे। उन्होंने उपर्युक्त दोहे का अर्थ और उसपर स्वानुभव टिप्पणी लिखी है, जो इस प्रकार है–'मै सबको और भी एक गुप्त विचार कहता हूँ। (वह यह है कि) किरणों (चैतन्य वृत्तियों–सुरत की धारों) को जोड़कर (एकत्र करके) कल्याण करने वाला भजन किए बिना (कोई) मेरी भक्ति नहीं पाती है।'

इस विषय पर उन्होंने अपने विचार का स्पष्टीकरण इस भाँति किया है–'कर = किरण। किरण प्रकाश रूप होनी चाहिए। शरीर में चैतनन्यवृत्ति वा सुरत की धार ज्ञानमयी तथा प्रकाशमयी है। अतएव इसी वृत्ति वा धार को किरण मानना चाहिए। गुप्त भेद के द्वारा अभ्यास करके जो कोई चैतन्यवृत्तियों को अन्तर में अति अल्पकाल भी जोड़ सकता है वा एकत्र कर सकता है वा दूसरे शब्दों में चित्त का निरोध कर सकता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है कि

जितनी देर उसको यह भजन ठीक बना, उतनी देर उसे अत्यन्त कल्याण वा चैतन्य प्राप्त हुआ और उसका हृदय ईश्वरीय प्रेम तथा भक्ति से भरा रहा। जानना चाहिए कि चौदहों इन्द्रियों के विषय में भटकता हुआ चित्तवाला चित्तवृति का निरोध नहीं कर सकता है और फलस्वरूप कल्याण व चैन कभी नहीं पा सकता है, किन्तु जब सब विषयों से छूटेगा तो सहज ही निर्मलतापूर्वक सर्वेश्वर की ओर हो जाएगा। अर्थात् वह सर्वेश्वर का प्रेम और भक्ति पा लेगा। इसलिए जो सत्संगी गुरुभेद और विचार के बल से नित्यप्रति सच्चाई से भजन अभ्यास करते-करते कभी किरणों को ठीक जोड़ सकेगा, तो अवश्य ही वह कल्याण और ईश्वर भक्ति पा जायेगा। किरणों को जोड़कर भजन करने की विधि 'रामचरित मानस-सार सटीक' चौपाई संख्या ५, २९२, २९३ और २९४ में उनके अर्थों और उनके नीचे कोष्ठों में लिखित है। यह भजन अत्यन्त गुप्त है, इसमें शक नहीं।'

—रामचरितमानस-सार सटीक, उत्तरकाण्ड

११.अपनी बात

कर और शंकर की व्याख्या

'कर' शब्द के अनेक अर्थों, में 'किरण' भी एक अर्थ होता है। 'रामचरितमानस' के आरंभ में गोस्वामीजी ने गुरु वन्दना में 'कर' शब्द का प्रयोग किया है। यथा—

'बंदउँ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रबिकर निकर।।'

—बालकाण्ड

अर्थात् कृपा के समुद्र, मनुष्य के रूप में ईश्वर, जिनका वचन महामोह रूप अंधकार-राशि को नाश करने के लिए सूर्य की किरणों का समूह है, ऐसे गुरु के चरण-कमल को मैं प्रणाम करता हूँ।

'रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानुकर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सो,भ्रम न सकइ कोउ टारि।।'

—बालकाण्ड

अर्थात् जैसे सीपी में चाँदी का और सूर्य की किरणों में जल का आभास होता है। यद्यपि ऐसा होना तीनों काल में मिथ्या है, तथापि इस भ्रम

को कोई टाल नहीं सकता।

विनय पत्रिका में—

'रबिकर नीर बसै अति दारुन, मकर रुप तेहि माहीं।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर,पान करत जे जाहीं।।'

अतएव महर्षि मेँहीँ-कृत उपर्युक्त 'कर' शब्द का अर्थ किरण और उसकी विलक्षण व्याख्या युक्तियुक्त जँचती है। वस्तुतः भगवान श्रीराम द्वारा वर्णित 'गुप्तमत' सर्वसाधाराण की बुद्धि के परे की बात है। गोस्वामीजी ने स्पष्ट कह दिया है—

'यहि मानस मानस चखु चाही।'

बिना दिव्य-दृष्टि प्राप्त किए जन 'रामचरितमानस' के गुप्त रहस्य को नहीं जान सकते। 'गुप्तमत' होने के कारण सांकेतिक भाषा में कहा गया है।

अब हम 'संकर' शब्द की ओर ध्यान दें तथा इसपर विवेकपूर्ण ढंग से विचार करें। 'संकर' शब्द का अर्थ होता है— मिश्रण, दोगला। जैसे वर्णसंकर यानि वह जिसकी उत्पत्ति भिन्न वर्ण या जाति के पिता और भिन्न वर्ण या जाति की माता से हुई हो। ज्ञातव्य हो कि भिन्न-भिन्न वर्ण के नर और नारि होने पर भी दोनों मानव जाति के ही होते हैं। उसी प्रकार हमारे अंदर इड़ा और पिंगला नाम की दो नाड़ियाँ हैं। हमारी दोनों आँखों से दो किरणें प्रवाहित होती हैं। दृष्टि की वायीं धार इड़ा और दायीं धार पिंगला है। वायीं धार शीत और दायीं धार उष्ण है। एक धार निगेटिव और दूसरी धार पॉजेटिव। यद्यपि दोनों नेत्रों से निःसृत धार चेतनधार ही है, तथापि एक दूसरे से भिन्न हैं—उलटे-उलटे हैं। इसलिए संकर शब्द का प्रयोग किया गया।

गुरु नानक देवजी ने विषय का स्पष्टीकरण इस भाँति किया है-

''दिन महि रैणि महि दीनी अरु उससण शीत विधि सोई।
ताकी गति मति अवरु न जाणै गुरु बिनु समझ न होई।।

दिन में रात और रात में दिन तथा उष्ण में शीत ओर शीत में उष्ण कहकर गुरुनानक देवजी ने इड़ा और पिंगला यानी बायीं और दायीं धारों को मिलाने का संकेत किया है । और संत कबीर कहतें हैं-

''गगन की ओट निशाना है।
दाहिने सूर चन्द्रमा बायें तिनके बीच छिपाना है।''

दिन में सूर्य होता है और रात्रि में चन्द्रमा । पूषण में उष्णता और शशि में शीतलता होती है । इसलिए इड़ा को चन्द्र और पिंगला को सूर्य की

संज्ञा दी गई ।

बंगाली योगी पंचानन भट्टाचार्य ने अपनी रचना 'योग संगीत' में लिखा है-

''आर केन मन भ्रमिछ बाहिरे चल ना आपन अन्तरे ।
बाहिरे जार तत कर अविरत सेत आज्ञाचक्रे विहरे ।।
बामें इड़ा नाड़ी दक्षिणें पिंगला
रजस्तमोगुणे करिते छे खेला,
मध्ये सत्वगुणे सुषुम्ना विमला
धर धर तॉ रे सादरे।।''

इस दृष्टि को अपनाकर संतो ने इस विषय पर विविध भाँति से प्रकाश डाला है ।

''इड़ा तिष्ठित वामेन पिंगला दक्षिणेन तु ।
तयोर्मध्ये परं यस्तद्वेद स वेदवित् ।।६।।''

(योगशिखोपनिषद्, अ० ६)

अर्थात् इड़ा बायीं ओर रहती है और पिंगला दाहिनी ओर । उन दोनों के बीच में जो स्थान (सुषुम्ना) है, उसको जो जानता है वही वेद जानता है ।

ये दोनों दृष्टि धाराएँ समानान्तर रेखाएँ हैं, फिर भी, संतसदगुरु की सद्युक्ति से तथा उनकी कृपा से क्रियाविशेष द्वारा दोनों धाराओं को मिलाकर एक किया जाता है । जैसे दो रेखाओं के मिलने से वहाँ एक बिन्दु उत्पन्न होता है, उसी प्रकार जब दृष्टि की दोनों धाराएँ गुरु-निर्देशित स्थान पर मिलकर एक होती हैं, तो वहाँ विन्दु उत्पन्न होता हे । ज्ञातव्य है कि लेखनी में जिस रंग की स्याही होती हैं, दो रेखाओं के मिलन-स्थान पर उसी रंग का विन्दु उत्पन्न होता है । दृष्टि की दोनों धाराएँ प्रकाशमयी होने के कारण दृष्टि के युगल धाराओं कें मिलन-स्थल पर प्रकाशमय-ज्योतिर्मय विन्दु उदय होता है । इस विन्दु-ध्यान को परमध्यान कहा गया है । तेजोबिन्दुपनिषद् के प्रथम अध्याय में लिखा है-

''तेजो बिन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम् ।। १ ।।''

अर्थात् हृदय स्थित विश्वात्म तेजस् स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है ।

इस क्रिया से तीसरी आँख खुल जाती है। साधारणतया प्रत्येक जन के दो-दो नयन होतें हैं, किन्तु भगवान शिव के तीन

हैं। इसलिए उनको त्रिलोचन भी कहते हैं । यूँ तो हमलोगों के भी तीन-तीन नेत्र हैं, क्योंकि हम उनकी संतान हैं न! बस अंतर इतना ही है कि उनमें तीसरे नेत्र को खोलने और बंद करने की क्षमता है और हममें नहीं। सर्वप्रथम भगवान शंकर ने तीसरे चक्षु का उद्घाटन किया था, इसलिए इसको शिवनेत्र और रुद्राक्ष भी कहते हैं।

इस नयन-विशेष की चर्चा के साथ क्रिया विशेष द्वारा प्राप्त लाभ विशेष के विषय में भी शिव-संहिता में लिखा है । यथा-

''शिरः कपाले रुद्राक्ष विवरं चिन्तयद् यदा ।
तदा ज्योतिः प्रकाशः स्याद् विद्युत् पुंजसमप्रभः।।
एतत् चिन्तन मात्रेण पापानां संक्षयो भवेत् ।
दुराचारोऽपि पुरुषो लभते परमं पदम् ।।

अर्थात् कपाल में शिवनेत्र के छिद्र पर जब ध्यान किया जाता है तो विद्युतपुंज (बिजलियों के समूह) के समान चमकता हुआ ज्योति- प्रकाश होता हे । इसके चिन्तन मात्र (घ्यान) से पापों का नाश होता है और दुराचारी पुरुष भी परमपद को प्राप्त करता है।

इससे मिलती-जुलती बातें हम रामचरितमानस के बालकाण्ड में पाते हैं–

श्री गुरु पद नख मनि गन जोति ।सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ।।
दलन मोह तम सो सु प्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ।।
उघरहिं विमल बिलोचन ही के । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक । गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ।।
जथा सुअंजन आजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ।।

श्री गुरुमहाराज के चरण-नख में मणियों की ज्योति है, जिसको स्मरण करने से हृदय में दिव्य-दृष्टि हो जाती है।

वह अच्छा प्रकाश (जो गुरु-पद-नख के स्मरण से दिव्य दृष्टि खुलने पर दरसता है) अज्ञान अंधकार को नाश करनेवाला है। जिसके हृदय में यह आ जाए, वह बड़ा भाग्यवान है।

(श्री गुरु-पद-नख के सुमिरण से) हृदय के दोनों निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात के सब दोष-दुःख मिट जाते हैं।

(हृदय में निर्मल नेत्र खुलते ही) मणि-माणिक-रूप रामचरित (चाहे वे) जिस खानि के गुप्त वा प्रकट हों, सूझने लगते हैं।

(दिव्यदृष्टि से दरसनेवाली गुरु-पद-नख से निकली हुई वह ब्रह्मज्योति) अच्छे अंजन की तरह है, जिसको साधक आँखों में लगाकर (अष्ट सिद्धि-प्राप्त) सिद्ध (पुरुष) और सुबोध (ज्ञानी) हो जाते हैं और बहुत सी धरतियों के, पहाड़ों और जंगलों का तमाशा देखते हैं। (रामचरितमानस-सार सटीक)

तृतीय चक्षु के उन्मेष से दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है। प्रभु के दिव्य रूपों के दर्शन होते हैं। अन्तस्तम दूरीभूत होकर उरपुर प्रकाश से भरपूर होता है।

भगवान के 'कर-जोड़ि' शब्द का तात्पर्य युगल नेत्रों की किरणों को एकत्रित कर भजन करने का है। यही कल्याणकारी 'संकर-भजन' है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद यदि 'शंकर-भजन' का अर्थ 'शंकरकृत-भजन' किया जाए तो शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी। एक बार इस ओर भी मुड़कर देखें।

संतमत की अंतस्साधना

प्रश्नोदय होगा कि भगवान शंकर ने कौन-सा भजन किया था? उत्तर में निवेदन है कि भगवान शंकर योगीश्वर थे। उनको यों अपने लिए कुछ करना बाँकी नहीं था, वे योग के सभी अंगों में निष्णात थे। फिर भी लोक-कल्याणार्थ अथवा यों कहिये, लोकादर्श हेतु आन्तर-बाह्य दोनों प्रकार के सत्संगों को किया करते थे। इस विषय की परिपुष्टि रामचरितमानस करता है। बाह्य सत्संग—कथा-प्रसंग वे काकभुशुण्डि जी के साथ करते थे। उनके सत्संग में पक्षिगण ही उपस्थित होते थे। इसलिए ये भी इस पक्षी का रूप धारणकर उनके सत्संग में सम्मिलित हुआ करते थे। आन्तरिक सत्संग यानी अन्तस्साधना में वे मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टियोग (दृष्टिसाधन) और नादानुसंधान (सुरत-शब्द-योग) की क्रिया करते थे। यथा—

'अस कहि लगे जपन हरिनामा। गई सती जहँ प्रभु सुखधामा।।'

—बालकाण्ड

यह मानस जप की क्रिया है।

'श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा।'—बालकाण्ड

'मनु थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना।।'—बालकाण्ड

यह मानस ध्यान यानी स्थूल-सगुण-साकार साधना या उपासना है।

'तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बटतर करि कमलासन।।'

'तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा।।'—बालकाण्ड

यह दृष्टियोग की क्रिया है। इसको सूक्ष्म-सगुण-साकार उपासना भी कहते हैं। इसमें तीसरे नयन का उन्मेष होता है, एकविन्दुता की प्राप्ति होती है। पूर्ण सिमटाव होता है, ऊर्ध्वगति होती है। साधक की पिण्ड से ब्रह्माण्ड में गति होती है। वह परमात्मा की दिव्य विभूतियों के दर्शन करता है। दिव्यदृष्टि खुलने से दूर-दर्शन सुलभ हो जाता है।

'बिन्दौ मनोलयं कृत्वा दूरदर्शनमाप्नुयात।'—योगशिखोनिषद्, अ०४

अर्थात् विन्दु में मन को लय करके दूरदर्शन प्राप्त करते हैं। तथा—**'एक विन्दुता दुर्बीन हो दुर्बीन क्या करे।।'** (महर्षि मेँहीँ-पदावली)

शिवपुराण में आया है—

''सारा चराचर जगत् विन्दु-नाद स्वरूप है। विन्दु शक्ति है और नाद शिव। इस तरह यह जगत् शिव-शक्ति स्वरूप ही है। नाद विन्दु का और विन्दु इस जगत् का आधार है, ये विन्दु और नाद (शक्ति और शिव) सम्पूर्ण जगत् के आधार रूप से स्थित हैं। विन्दु और नाद से युक्त सब कुछ शिव स्वरूप हैं, क्योंकि वही सबका आधार है। आधार में ही आधेय का समावेश अथवा लय होता है। यही सकलीकरण है। इस सकलीकरण की स्थिति से ही सृष्टिकाल में जगत् का प्रादुर्भाव होता है, इसमें संशय नहीं है। शिवलिंग विन्दु नाद स्वरूप है। अतः उसे जगत् का कारण बताया जाता है। विन्दु देवी है और नाद शिव, इन दोनों का संयुक्त रूप ही शिवलिंग कहलाता है। अतः जन्म के संकट से छुटकारा पाने के लिए शिवलिंग की पूजा करनी चाहिए। विन्दु रूपा देवी उमा माता है और नाद स्वरूप भगवान शिव पिता। इन माता-पिता के पूजित होने से परमानंद की ही प्राप्ति होती है। अतः परमानंद का लाभ लेने के लिए शिवलिंग का विशेष रूप से पूजन करें।

उमा देवी जगत् की माता है और भगवान शिव जगत् का पिता। जो इनकी सेवा करता है, उस पुत्र पर इन दोनों माता-पिता की कृपा नित्य अधिकाधिक बढ़ती रहती है।''

'माता देवी बिन्दु रूपा नाद रूपः शिवः पिता।।
पूजिताभ्यां पितृभ्यां तु परमानंद एवहि।
परमानंदलाभार्थं शिवलिंग प्रपुज्यते।।
सा देवी जगतां माता स शिवोजगतः पिता।
पित्रोः शुश्रूषके नित्यं कृपाधिक्यं हि वर्धते।।'

(संक्षिप्त शिव पुराण, विंधेश्वर संहिता, गीता प्रेस गोरखपुर वि. १६/९१-१३)

विन्दु और नाद के संबंध में महर्षिं मेंहीं परमहंसजी के विचार द्रष्टव्य हैं– ''योगशिखोपनिषद् में भगवान शिव और ब्रह्मा का संवाद है। ब्रह्मा ने शिवजी से पूछा–कोई योग और कोई ज्ञान मोक्ष प्राप्ति के लिए बतलाते हैं, आपका क्या मत है? इस पर शिवजी ने उत्तर दिया–ज्ञानहीन योग और योगहीन ज्ञान मोक्ष कर्म में समर्थ नहीं होता, इसलिए मुमुक्षु को ज्ञान और योग दोनों का दृढ़ता के साथ अभ्यास करना चाहिए।.....जीवन भर अपना कुछ पूजापाठ करो, यदि उससे दर्शन नहीं हो या किसी प्रकार का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो जाये, तो संतोष नहीं होता। संतों की युक्ति है, जिसके अनुकूल साधन-भजन करने से ऐसा होता है। जैसे ठाकुरबाड़ी कोई जाए और ठाकुरजी को नहीं देखे तो कहना चाहिए कि उसको देखने की आँख नहीं है। उसी प्रकार जिससे परमात्मा का कुछ चिह्न देखने में आता है, वह दृष्टि सबको है; किन्तु उससे काम लेने के लिए, देखने के लिए लोग नहीं जानते हैं। जानकार भी कितने साधन नहीं करते। यदि साधन किया जाये तो प्रत्यक्ष हो जायेगा। जिसको दर्शन हुआ, वे कहते हैं–'आपका शरीर शिवालय है, इसमें शिवलिंग की स्थापना है।' बाहर में प्रस्तर का शिवलिंग बनाकर पूजते हैं। आपके अंदर में बनी हुई प्रतिमा शिवलिंग प्राकृतिक है। वह बना हुआ ही है, बनाने की जरूरत नहीं। वह नाद-रूप है। शब्द-रूप शिवलिंग है। शिवलिंग के नीचे जलढरी रहती है, उसी प्रकार उस नाद के नीचे विन्दु है। शिवलिंग रूप नाद है और विन्दु रूप (शक्ति चिन्ह) जलढ़री है। जो साधन करे, उसको ये अपने अंदर में प्रत्यक्ष होंगे। जो अच्छी तरह कोशिश करे तो अवश्य देखेगा। यह कोई ऊँचे दर्जे की चीज नहीं है। नीचे की ही है; किन्तु मन को पवित्र रखना जरूरी है। जिसका मन पवित्र नहीं है, वह उसे

नहीं देख सकता। नाद का अर्थ है शब्द और विन्दु का अर्थ है छोटे-से-छोटा चिह्न। जिसमें परिमाण नहीं है, केवल स्थान है, वह विन्दु है। बाहर में ऐसा चिह्न नहीं हो सकता, जिसे आँख से देखा जा सके। कोई भी आकार या दृश्य विन्दु के बिना नहीं बन सकता। कोई चित्र बनाओ। पेंसिल रखने से जो पहले चिन्ह उदित होगा, वही विन्दु होगा। फिर उसी को बढ़ाकर लंबाई-चौड़ाई बनाकर आकार बनाते हैं। इसलिए बिना विन्दु से कोई आकार नहीं बन सकता है। उसके लिए किसी पेंसिल वा कलम की जरूरत नहीं। अपनी दृष्टि की नोक जहाँ दृढ़ता से ठहराकर रखेंगे, वहीं विन्दु उदित होगा। विन्दु जलढरी है और जलढरी पर शिवलिंग खड़ा रहता है। उसी प्रकार जहाँ विन्दु उदित होगा, उसके ऊपर नाद खड़ा हो जाता है। संसार में बिना शब्द के कोई जगह नहीं। शब्द कैसे होता है? शब्द संघर्ष से होता है, गति से होता है। गति कहते हैं चलने को, कम्प को। तारे चलते हैं, पृथ्वी चलती है। सबकी गति में शब्द होता है, किन्तु आप सुन नहीं पाते। गति में ध्वनि है, संसार के सब पदार्थों में गति है। बिना शब्द के संसार का एक रत्ती भी स्थान खाली नहीं। हमलोगों का शरीर बढ़ता है, इसमें भी गति होती है। इसके शब्द को सुन नहीं पाते। नाड़ियाँ चलती हैं। इससे भी आवाज होती है। जहाँ कुछ गति है-संचालन है, वहाँ ध्वनि है। संसार गतिशील है। इसलिए संसार शब्द से भरा है। आपके शरीर में भी शब्द है। स्थूल शब्द को डॉक्टर लोग कान में यंत्र लगाकर सुनते हैं, किन्तु बारीक शब्द को नहीं सुन सकते। बारीक शब्द तब सुन सकते हैं, जब आप विन्दु को प्राप्त कर लें। विन्दु को प्राप्त करनेवाला सूक्ष्म शब्द को सुन सकता है। वह शब्द शिव-रूप है। शिव का अर्थ कल्याणकारी है। उसको जो प्रत्यक्ष करता है, उसका कल्याण होता है। विन्दु में जो अपने मन को समेट सकता है, दृष्टि को समेटकर देखता है तो उसमें शक्ति आ जाती है। फैलाव में शक्ति घटती है, सिमटाव में शक्ति बढ़ती है। जिसकी दृष्टि सिमट गई है, उसकी शक्ति बढ़ जाती है और नाद-रूप शिव की उसे प्रत्यक्षता हो जाती है। रूप या दृश्य का बनना बिना विन्दु से नहीं होता। इसलिए सब दृश्य का बीज विन्दु है। किसी आकार और दृश्य का आरंभ एक विन्दु से होता है और उसका अंत एक विन्दु पर ही होता है। दृश्य जगत् का बीज विन्दु

है और अदृश्य जगत् का बीज शब्द है जिसकी वृत्ति शब्द-रूप शिव को पकड़ लेती है, वह सारी सृष्टि का अंत कर जाता है। उसे मोक्ष के साथ परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है।

दृष्टियोग की साधना करनेवाले साधक को स्वतः नादानुभूति होती है और तब वे नादानुसंधान की क्रिया करते हैं, जिससे मनोलय होकर समाधि लग जाती है। भगवान शंकर को समाधि लगती थी। रामचरितमानस के बालकाण्ड में पढ़िए–

'संकर सहज सरूप सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा।।'

मुक्तिकोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में लिखा है–

भगवान श्रीराम ने हनुमानजी को उपदेश देते हुए बताया कि समाधि दो प्रकार की होती है– (१) सम्प्रज्ञात समाधि और (२) असम्प्रज्ञात समाधि।

'ब्रह्माकार मनोवृत्ति प्रवाहोऽहंकृतिं विना।
सम्प्रज्ञात समाधिः स्याद्ध्यानाभ्यासप्रकर्षतः।।५३।।'

जब अहंकार वृत्ति निरुद्ध होकर केवल ब्रह्माकार में चित्त की वृत्ति होकर रहती है, इसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं, यह अतिशय ध्यानाभ्यास से होती है।

'प्रशान्तवृत्तिकं चित्तं परमानन्ददायकम्।
असम्प्रज्ञातनामायं समाधिर्योगिनां प्रियः।।५४।।

जब चित्त की सब वृत्तियाँ प्रशान्त हो जाएँगी, उसी अवस्था का नाम असम्प्रज्ञात समाधि है, वह योगियों को प्रिय है। तथा–

'प्रभा शून्यं मनः शून्यं बुद्धि शून्यं चिदात्मकम्।
अतद्व्यावृत्तिरूपोऽसौ समाधिर्मुनिभावितः।। ।।'

ज्योति, मन तथा बुद्धि रहित होकर केवल चैतन्य आत्मा ही रहे, यह अतद्व्यावृत्ति (जिसको किसी दूसरे की आवश्यकता न हो) समाधिस्थ मुनियों से अभिलषित है।

'उर्ध्वपूर्णमधः पूर्णं शिवात्मकम्। साक्षाद्विधिमुखो ह्येष समाधिः पारमार्थिकः।।५६।।

(इस समाधि में) ऊपर नीचे और मध्य, सर्वत्र कल्याणकारी ब्रह्म की परिपूर्णता की अनुभूति होती है, विधि-मुख (कथित) यह पारमार्थिक समाधि है।

सच्छास्त्रों में सविकल्प और निर्विकल्प, दो प्रकार की समाधि

कही गई है। सविकल्प समाधि उसको कहते हैं जो किसी आलम्बन की सहायता से होती है। निर्विकल्प समाधि वह है, जिसमें ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय का कोई भेद नहीं रह जाता है। संत कबीर साहब ने इसको सहज समाधि की संज्ञा दी है–

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली।।१।।
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा।।२।।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खाँव पियों सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटाऔं दूजा।।३।।
आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।।४।।
सब्द निरंतर से मन लागा, मलिन बासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी लागी।।५।।
कहै कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
दुख सुख से कोई परे परमपद, तेहि पद रहा समाई।।६।।

यह सहज समाधि 'नादानुसंधान' की क्रिया से होती है। अपने वचन में उन्होंने बतलाया है कि निरंतर होनेवाले शब्द में उनका मन लग गया। निरंतर होनेवाला शब्द सारशब्द होता है, जो अहर्निश होता रहता है। साधक को उस शब्द के श्रवण में दिन-रात का अथवा दैनन्दिन कार्य का व्यवधान नहीं होता। भगवान शंकर की अखंड समाधि, संत कबीर साहब की सहज समाधि और गोस्वामीजी की –

जाके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिनके हिय तुम कहँ गृह रूरे।।

ये तीनों एक ही अन्तस्साधना की ओर इंगित करते हैं, जो कि नादानुसंधान से संबंधित है। संत कबीर साहब का 'शब्द निरंतर' ही गोस्वामीजी का 'भरहिं निरंतर' है, जिसको भगवान शंकर की 'अखंड समाधि' कही गई है।

महायोगी भगवान शिवजी ने मनोलय के एक लाख पचीस हजार साधन बतलाएँ हैं, जिनमें नादानुसंधान को सरल, सुखद और विपद-शून्य बतलाया है। इस संदर्भ में श्री मदाद्यशंकराचार्यजी ने अपने 'योगतारावलि' ग्रंथ में इस प्रकार लिखा है–

'सदा शिवोक्तानि सपादलक्ष लयावधानानि वसन्ति लोके।
नादानुसंधानसमाधिमेकं मन्या महे मान्यतमं लयानाम् ।।
नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महे तत्त्वपदं लयानाम्।
भगवत्प्रसादात् पवनेन साकं विलीयते विष्णुपदे मनो मे ।।'
'सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवानुसंधेयो योगसाम्राज्यमिच्छता।।'

योग शास्त्र के प्रवर्तक भगवान शिव ने मन के लय होने के सवा लक्ष साधन बतलाये हैं, उन सबमें नादानुसंधान सुलभ और श्रेष्ठ है। हे नादानुसंधान! आपको नमस्कार है, आप परमपद में स्थित कराते हैं, आपके ही प्रसाद से मेरे प्राण-वायु और मन, ये दोनों विष्णु के परमपद में लीन हो जायेंगे। योग साम्राज्य में स्थित होने की इच्छा हो तो सब चिन्ताओं को छोड़कर सावधान हो एकाग्र मन से अनहद नादों को सुनो।

'द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्द ब्रह्म परम च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्नातः परं ब्रह्माधिगच्छति ।।१७।।' (ब्रह्मविन्दुपनिषद्)

दो विद्यायें समझनी चाहिए, एक तो शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। जो शब्दब्रह्म में निपुण हो जाता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।

मानस जप और मानस ध्यान; ये दोनों 'संकर-भजन' में सहायक हैं तथा अमादृष्टि, प्रतिपदा दृष्टि या पूर्णिमा दृष्टि से यानी किसी भी दृष्टि से एवं वैष्णवी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा या किसी भी मुद्रा से जब दृष्टि की युगल धाराएँ मिलकर केन्द्रित होती हैं, तो तेजोमय विन्दु उदित होता है। अर्थात् विन्दु रूपा माँ पार्वती (शक्ति) के दर्शन होते हैं। यहाँ से शंकर-भजन का आरंभ होता है। अर्थात् शरीर रूपी शिवालय में विन्दु रूपा माँ पार्वती और नाद शिव का साक्षात्कार होता है। उसी नाद ब्रह्म की उपासना से परब्रह्म (राम) की प्राप्ति होती है। यहीं 'संकर-भजन' पूर्ण होता है। इस प्रकार विन्दुरूपी जलढ़री पर नादरूप लिंग (शिव) उपस्थित होते हैं और लोकचेतना के शिवप्रतीक जलढ़री पर लिंग की अवस्थिति की सार्थकता सिद्ध होती है। रामचरितमानस में वर्णित 'संकर-भजन' से संबंधित 'गुप्तमत' का रहस्य यही है।

उपसंहार

भारत की संस्कृति ऐसी है कि यहाँ के निवासी अपने अर्जित ज्ञान के आधार पर कुछ-न-कुछ उपासना नित्य-नियमित रूप से अवश्य किया करते हैं। उपासनाओं में शिव-शक्ति, विष्णु-लक्ष्मी, राम, कृष्ण, सूर्य, गणपति आदि इष्ट प्रसिद्ध हैं। इन सब इष्टों के स्थूल रूप में यद्यपि भिन्नता का बोध होता है तथापि सबकी आत्मा अभिन्न है।

रूप (दृश्यजगत्) का आरंभ एक विन्दु से होता है और नाम (अदृश्यजगत्) का आरंभ नाद से। इसलिए यह बात बड़ी सरलता से समझी जा सकती है कि समस्त नाम-रूपों का जनक नाद और विन्दु है। इस दृष्टि को अपनाए रखकर सूक्ष्म विचार करने पर विन्दु और नाद की उपासना में सबकी उपासना सुनिष्पन्न हो जाती है। यही कारण है कि योगशिखोपनिषद् के प्रथम अध्याय में विष्णु-लक्ष्मी कहकर उपासना करने का उल्लेख किया गया है।

विन्दु को ही श्रीमद्भगवद्गीता (८/९) में 'अणोरणीयाम्' कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने उसका ध्यान करने का आदेश दिया है और मनुस्मृति (अ० १२ श्लोक १२२) में भी परमात्मा के अणु स्वरूप के ध्यान करने की आज्ञा है। विन्दु और नाद के संबंध में वायवीय संहिता में और भी अधिक स्पष्ट कहा है–

'आसी द्विन्दुस्ततो नादो नादाच्छक्ति समुद्भवः।
नाद रूपा महेशानि चिद्रुपा परमा कला।।' (वायवीय संहिता)

अर्थात् पहले विन्दु तब नाद और नाद से शक्ति उत्पन्न होती है। चैतन्य-रूपा परमाकला महेशानि (शिवा) नाद-रूपा है।

ध्यानविन्दूपनिषद् में आया है कि परम विन्दु ही बीक्षाक्षर है, उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अविनाशी ब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निःशब्द परमपद है। इस मंत्र के माध्यम से ऋषि ने नादानुसंधान की विधि की स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने बताया है कि विन्दु पर नाद अवस्थित है अर्थात् साधक प्रथम विन्दु ग्रहण करे पश्चात् नाद। और यह नाद जहाँ विलय होगा वह परमपद वा परमात्मपद है। एतदर्थ ऐसी सद्युक्ति की आवश्यकता है, जिसके द्वारा प्रथम विन्दु ग्रहण हो और विन्दु ग्रहण होते ही स्वाभाविक नादानुभूति भी हो।

योगशिखोपनिषद् में लिखा है कि विन्दु पीठ का भेदन करके नाद लिंग उपस्थित होता है– 'विन्दुपीठं विनिर्भिद्य नाद लिंगमुपस्थितम्।' (अ० २)

संतों की वाणियों में भी हम विन्दु-ग्रहण के पश्चात् ही नाद-श्रवण की विधि का उल्लेख पाते हैं। जैसे–

'श्रूति ठहरानी रहै अकाशा। तिल खिड़की में निसदिन वासा।।
गगन द्वार दिसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा।।' (संत तुलसी साहब)

संत तुलसी साहब ने ज्योतिर्मय विन्दु को यहाँ 'तिल' कहकर संकेत किया है। संत कबीर साहब ने भी 'विन्दु' को 'तिल' शब्द से संबोधित किया है और कहा है कि जो कोई पहले विन्दु वा तिल पर सुरत स्थिर कर पाता है, वह विद्युत्प्रभासह मेघ-गर्जन और अनहद नाद भी सुन पाता है।

'प्रथमे सुरति जमावे तिल पर, मूल मंत्रा गहि जावै।
गगन गराजै दामिनी दमकै, अनहद नाद बजावै।।'

गुरु नानकदेवजी ने बताया है कि अपनी चेतन वृत्ति को इड़ा पिंगला से हटा, सुषुम्ना में लाकर नाद-श्रवण वा नादानुसंधान का अभ्यास करे। यथा–

'सुखमन कै घरि राग सुनि, सुन मंडल लिव लाइ।
अकथ कथा विचारिऐ, मनसा मनहीं समाइ।।'

संत पलटू साहब की वाणी में हम पाते हैं–

'विन्दु में तहँ नाद बोलै रैन दिवस सुहावनं।।'

संत राधास्वामी साहब ने भी विन्दु को तिल शब्द से अभिहित किया और उसकी प्राप्ति का निर्देशन उन्होंने सुषुम्ना में किया है।

'सुरत शब्द एक अंगकार, देखो विमल बहार।
मध्य सुखमना तिल वसै, तिल में जोत अकार।।'

पुनः उन्होंने सुरत को तिल द्वार तक खींचकर ले जाने और वहाँ दाहिनी ओर की शब्द धार को ग्रहण करने का आदेश दिया है।

'सुरत खैंच तक तिल का द्वार। दहिनी दिशा शब्द का धार।।'

महर्षि मेंहीं परमहंसजी महाराज की अनुभूतिपूर्ण वाणी में हम कह सकेंगे–

'तिल द्वार तक के सीधे, सुरत को खैंच ला।

अनहद धुनौ को सुन सुन, चढ़ चढ़ के खोजना।।'

ज्योतिर्विन्दु-ग्रहण वा तिल-धारण अथवा सुषुम्ना में अपनी सुरत-वृत्ति की स्थिति के लिए दृष्टि-साधन की क्रिया करनी पड़ती है, जिसके तीन भेद हैं–अमा-दृष्टि, प्रतिपदा-दृष्टि ओर पूर्णिमा-दृष्टि। आँख बंदकर देखना अमा-दृष्टि है, आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा-दृष्टि है और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा-दृष्टि है। उसका लक्ष्य नासाग्र होना चाहिए। पुनः यह कह देना आवश्यक है कि दृष्टि की इन तीनों विधियों में अमादृष्टि की साधना सरल, सुखद, आपदाहीन और प्राचीन है। अमादृष्टि से ध्यानाभ्यास करने का अर्थ है–निमिलित नेत्र से ध्यान करना। इस तरह आँख बंदकर ध्यान करने से अमा निशीथ की तमिस्रा साधक के सम्मुख उपस्थित हो जाती है। अपनी वृत्ति को इस अमावस्या के श्याम गगन मे रखने पर उसके मन पर कोई नया संस्कार नहीं पड़ता। इसका हेतु यह है कि आँख बंद रहने पर कोई भी जागतिक दृश्य गोचर नहीं होता। जागतिक दृश्य के अभाव में तत्संबंधी भाव मन में उत्पन्न नहीं होता और मन की चंचलता छूटती है। इस प्रकार साधक गुरु निर्देशित स्थान पर क्रिया विशेष द्वारा अपने मन और दृष्टि को स्थिर कर अपने पुराने अशुभ संस्कारों को शमन करने में सक्षम होता है।

भक्तवर श्रद्धेय जयदयालजी गोयंदका ने दृष्टि-साधन और नादानुसंधान पर कितना सुन्दर तथा स्पष्ट प्रकाश डाला है–

'दृष्टि जमाने का और आँख मूँदकर ध्यान करने का परिणाम तो मन की स्थिरता और शुद्धि, बुरे संकल्पों का नाश और शांति इत्यादि हुआ करते हैं...। कान बंद करके अंदर की आवाज में भगवान के नाम की ध्वनि सुनने का साधन भी बड़ा उत्तम है। इसमें हानि की कोई बात नहीं है। दूसरे साधनों के साथ इसे भी किया जा सकता है क्योंकि उस समय हल्ला-गुल्ला कम होकर शांत वातावरण हो जाता है।' (कल्याण वर्ष ३०, अंक-९, पृष्ठ ११६८)

नादानुसंधान की विशेष विधि तथा तज्जनित लाभ के विशेष बोधार्थ नादविन्दूपनिषद् के निम्न अवतरण पठनीय हैं।

सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैष्णवीम्।
श्रृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा।।

सिद्धासन में स्थित होकर वैष्णवी मुद्रा का अभ्यास करते हुए, योगी

दाहिने कान से आन्तरिक नाद सर्वदा सुने।

मकरन्दं पिवन्भृंगों गंधान्नापेक्षते यथा।
नादासक्तं सदा चित्तं विषयं न हि कांक्षति।
बद्धः सुनादगन्धेन सद्यः संत्यक्त चापलः।।

जिस प्रकार मधुमक्खी मधु को पीती हुई उसकी सुगंध की चिन्ता नही करती है, उसी प्रकार चित्त जो सदा नाद में लीन रहता है, विषय चाहना नहीं करता है; क्योंकि वह नाद की मिठास में वशीभूत है तथा अपनी चंचल प्रकृति को त्याग चुका है।

नादग्रहनतश्चित्तमन्तरंग भुजंगमः।
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः कुत्रचिन्न हि धावति।।

नाग रूप चित्त नाद का अभ्यास करते-करते पूर्ण रूप से उसमें लीन हो जाता है और सभी विषयों को भूलकर नाद में अपने को एकाग्र करता है।

मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यान चारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।

नाद मदान्ध हाथी रूप चित्त को, जो विषयों की आनंद-वाटिका में विचरण करता है, रोकने के लिए तीव्र अंकुश का काम करता है।

नादोऽन्तरंग सारंग बन्धने वागुरायते।
अन्तरंगसमुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा।।

मृग-रूपी चित्त को बाँधने के लिए (नाद) जाल का काम करता है। समुद्र-तरंग-रूपी चित्त के लिए (नाद) तट का काम करता है।

तावदाकाश संकल्पो यावच्छब्दः प्रवर्तते।
निशब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मा समीयते।।

जबतक आकाश संकल्प है, तबतक नाद की स्थिति रहती है, उसके परे अशब्द परब्रह्म परमात्मा है।

सर्वेश्वर के पाने का स्वयं-सिद्ध साधन विन्दुध्यान और नादध्यान है, यह मार्ग सबके लिए सरल, सुखद और सर्वथा संकट-शून्य है। त्रयताप तापित जन को संसृति-संताप से निस्तार पाने के लिए इसका अभ्यास करना चाहिए।

हम पढ़ चुके हैं कि विन्दु-रूपा उमा माता हैं और नाद स्वरूप भगवान शिव पिता। साथ ही यह भी पढ़ चुके हैं कि भगवान शिव

ने विन्दु को शक्ति रूप और स्वयं को नाद रूप बताया है। इतना ही नहीं, विन्दु को लक्ष्मी-रूप और नाद को विष्णु-रूप भी कहा है। इससे स्पष्ट है कि शक्ति और लक्ष्मी विन्दुरूपा हैं तथा शिव और विष्णु नाद-स्वरूप। कहने का तात्पर्य यह कि उमा (शक्ति) और लक्ष्मी स्थूलरूप में दो दीखती है, किन्तु सूक्ष्म रूप में दोनों एक हैं। इसी भाँति भगवान शंकर और भगवान विष्णु स्थूल रूप में भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं; परन्तु सूक्ष्म रूप मे युगल अभिन्न ही हैं। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध है कि विन्दु और नाद की साधना करनेवाले शिव-भक्त ही राम के भक्त हो सकते हैं, अन्य नहीं। भगवान श्रीराम ने अपनी प्रजा को 'संकर-भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि' कहने का तत्वार्थ यही है।

वास्तविक बात तो यह है कि भिन्न-भिन्न इष्टों के मानने वाले के भिन्न-भिन्न इष्टदेव कहे जाते हैं इन सब इष्टों के भिन्न-भिन्न नाम रूप होने पर भी सबकी आत्मा अभिन्न है। भक्त जबतक अपने इष्ट के आत्मस्वरूप को प्राप्त न कर ले, तबतक उसकी भक्ति पूरी नहीं होती और न तबतक पूर्ण कल्याण होता है। इसलिए प्रत्येक साधक के लिए आवश्यक है कि वह अपने इष्ट के स्थूल-सगुण-साकार रूप से उपासना का आरंभ कर उनके आत्मस्वरूप का भी साक्षात्कार करे।

'गुप्तमत,' 'कर-जोड़ि' तथा 'शंकर-भजन' से राम-भक्ति किस प्रकार होती है, समास रूप में कहा जा चुका।

समाप्त

* * * * *

महाकवि धनेश्वर प्रसादः एक परिचय

श्री परीक्षित मंडल 'प्रेमी'

विलक्षण वैदुष्य और कारयित्रि प्रतिभा से सम्पन्न कथाकोविद् काव्यकार धनेश्वर प्रसाद पंडित का जन्म २२ अक्तूबर, १९४९ ई० में गोड्डा जिले के नवडीहा ग्राम में हुआ। इनके पिताश्री स्व० सुधू पंडित और माता श्रीमती मुखली देवी दोनों ही धर्म एवं शिक्षा के अनन्य प्रेमी थे। इनकी पत्नी श्रीमती बिन्दी देवी सरलता, पवित्रता एवं हिन्दू नारी की मर्यादा और शील, संयम की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। इन्होंने हिन्दी विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा, दुमका सिदो-कान्हू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् इनकी नियुक्ति शिक्षक के रूप में हो गई, जिसका निर्वाह ये अत्यन्त योग्यतापूर्वक कर रहे हैं।

छायावाद के मूर्द्धन्य महाकवि जयशंकर प्रसाद की तरह इनकी काव्य-प्रतिभा भी महाकाव्य की रचना में अधिक निखरकर सामने आई। अनेक पौराणिक तथा ऐतिहासिक विमल चरित्रों को आधार बनाकर इन्होंने प्रबंध -काव्य रचना की है। ये सांस्कृतिक-चेतना के वरेण्यकविर्मनीषी माने जाते हैं। इनके सरल स्वभाव, निश्छल व्यवहार और इनके संस्कार संपूर्ण रूप से भारतीय हैं। जीवन में सादगी, सरलता, संयम, साधना, शील और महार्घ मर्यादा की ये प्रतीक हैं। और इसी का प्रतिफलन इनके काव्य-साहित्य में भी दृष्टिगोचर होता है। इनका विराट् व्यक्तित्व बहुत कुछ अन्तर्मुखी होते हुए भी समाज, युग के वातावरण के प्रति अनवरत उद्बुद्ध है। बलिदान, नल-दमयन्ती, रूपमती इत्यादि इनकी प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य-कृतियाँ हैं। संतकवि महर्षि मेँहीँ परमहंस और महर्षि संतसेवी परमहंस की विमल विचार-धारा का इनपर गहरा प्रभाव है। अधुनातन भारत के महान चिंतक और दार्शनिक महर्षि मेँहीँ के जीवन पर इन्होंने एक महाकाव्य की रचना की है जो प्रकाशनाधीन है। व्यापक जीवन अनुभूति की सच्चाई, अभिव्यक्ति की गहराई, आत्मीयता एवं सहजता इनके काव्य के प्राणतत्त्व हैं। कविता शब्द नहीं हैं। जीवन के व्यापक अनुभवों, पराभास्वर भावों, विमल विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति ही कविता है। जो शब्दों के रूप में बाहर आते हैं। इदमित्थम्

हिन्दी अध्यापक, संत फ्रांसिस उच्चविद्यालय
पोड़ैयाहाट, जिला- गोड्डा ८१४१३३ (झारखंड)

आवरण प्रदाता- श्रीभेदानन्द पंडित